जैन भारती

अप्रैल, 2011 • वर्ष 59 • अंक 4 • वार्षिक रु. 200.00

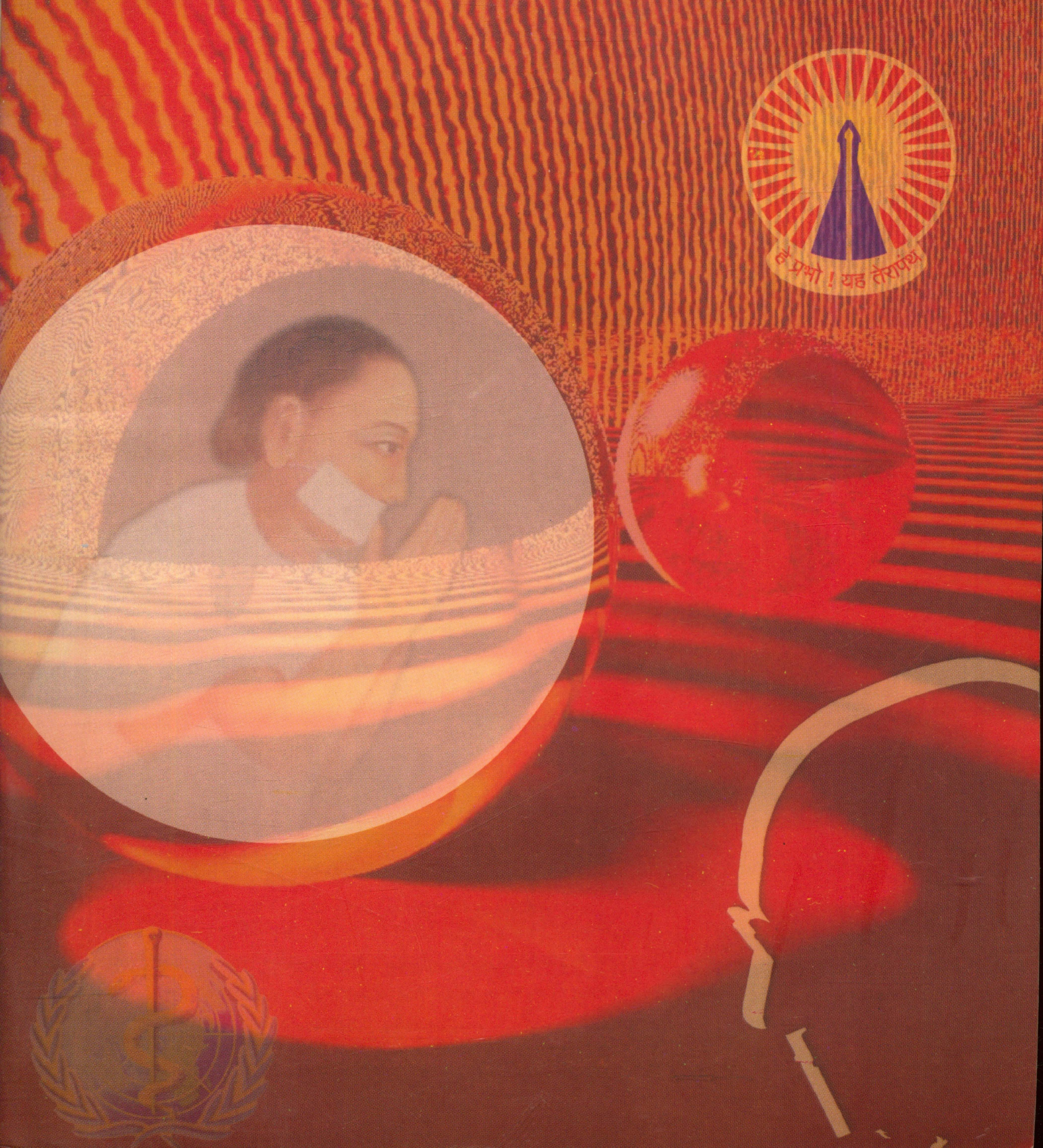

With best compliments from :

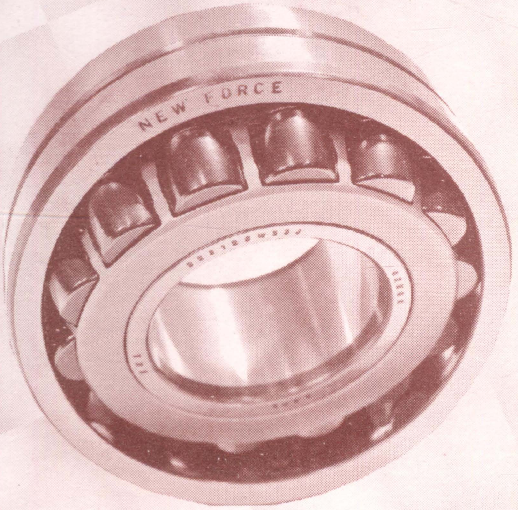

ZKL's New Force bearings has just got gold.

But the real winner is you!

Winner of the Gold medal at the best exhibits contest at the 50th International Engineering Fair, Brno, ZKL's New Force bearings are designed for the most demanding mountings-gearboxes, railway vehicles, presses, rolling mills, paper machines, pumps, machine tools, power equipments, printing machinery etc. Higher dynamic load rating gives bearings a longer life and permits laying of structures of lesser dimensions by accommodating the same load, thus reducing the total cost of the installation as well as achieving energy savings in operation. So be a frontrunner in your industry with the New Force technology, only from ZKL.

ZKL Bearings (India) Pvt. Ltd.

ZKL Bearings (India) Pvt. Ltd.
B-3/1A Gillander House, 8 Netaji Subhash Road, Kolkata-700001 Tel: +91-33-22138591-95, 22428441
Fax: +91-33-22428440 Email: kolkata@zklindia.com Website: www.zklindia.com

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 59 • अप्रैल, 2011 • अंक 4

विमर्श

11
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
आरोग्य-शास्त्र भाव विशुद्धि और पवित्रता

16
आचार्यश्री महाश्रमण
साधना के दो आधार: काय-समाधारणा; मन-समाधारणा

रपट

44
भवानी सोलंकी
147वां मर्यादा महोत्सव

54
महासभा : 97वां वार्षिक अधिवेशन

•
आवरण
गौरीशंकर

अनुभूति

21
समणी डॉ. अमितप्रज्ञा
आचार्यश्री भिक्षु : एक विजितात्मा; एक अध्यात्म योगी

24
साध्वी राजकुमारी (द्वितीय)
आचार्यश्री महाप्रज्ञ : अंतर्जागृति के अभिनव प्रेरणास्रोत

27
कहानी
वीरेंद्रकुमार जैन
वैशाली के संथागार में

32
कविता
विजय नाहटा की कविता

प्रसंग

7
शुभू पटवा
समय का सन्नाटा

शीलन

35
साध्वी जयमाला
आचार्यश्री भिक्षु : एक आत्मार्थी महापुरुष; एक विलक्षण स्रष्टा

40
समणी मल्लिप्रज्ञा
सुंदर भविष्य के सबल कारक

50
बालकथा
रमेशचंद्र शाह
हा! हूं लाटसाहब का बच्चा

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 0151-2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

दूसरे पर रंग तब चढ़ता है

'वैरागी की वाणी सुनने से वैराग्य उत्पन्न होता है'—इस पर स्वामीजी ने दृष्टांत दिया—'कसूंबा स्वयं गलता है, तब वह वस्त्रों को रंग सकता है। कसूंबा की गांठ बांध देने पर भी उसका वस्त्र पर रंग नहीं चढ़ता, क्योंकि वह स्वयं घुला हुआ नहीं है।'

'इसी प्रकार शुद्ध मान्यता और आचार वाला वैरागी साधु, जो स्वयं वैराग्य में लीन है, दूसरों पर वैराग्य का रंग चढ़ा देता है।'

यही भाव से भक्ति करेगा

एक व्यक्ति स्वामीजी से चर्चा करते समय अंटसंट बोलता था। तब स्वामीजी से किसी ने कहा—'महाराज! यह अंटसंट बोलता है, उससे आप क्या चर्चा करते हैं?'

स्वामीजी बोले—'छोटा बच्चा जब तक नहीं समझता है, तब तक वह अपने पिता की मूंछ को खींचता है और उसकी पगड़ी को भी उतार फेंकता है, किंतु समझ आने के बाद वही अपने पिता की सेवा-चाकरी करता है। इसी प्रकार यह जब तक साधुओं के गुणों को नहीं पहचानता है, तब तक अंटसंट बोलता है। गुण की पहचान होने के बाद यही भाव से भक्ति करेगा।'

अभी पंचांग का भाव तेज है

हम रात्रि को व्याख्यान देते और अमुक संप्रदाय के साधु भी रात्रि को व्याख्यान देते। हम बाजार में ठहरते और वे भी देखा-देखी बाजार में ठहरते। इस प्रकार देखा-देखी काम करते हैं, पर शुद्ध मान्यता और आचार के बिना काम सिद्ध नहीं होता। इस पर स्वामीजी ने दृष्टांत दिया—'एक साहूकार था। वह स्वयं समझदार नहीं था। वह पड़ोसी की देखा-देखी व्यापार करता था। पड़ोसी जो वस्तु ख़रीदता, उसे वह भी खरीद लेता। जब पड़ोसी ने सोचा—'यह मेरी देखा-देखी कर रहा है या इसमें स्वयं की समझ है?'—पड़ोसी ने अपने बेटे से कहा—'अभी पंचांगों के भावों में तेजी है, इसलिए परदेशों से पंचांग हमें खरीद लेने हैं। थोड़े दिनों में दुगुने दाम उठ जाएंगे।'

साहूकार ने यह बात सुनी और वह परदेश में जा, नए और पुराने पंचांगों को खरीद लाया। उसकी पूंजी नष्ट हो गई।

इसी प्रकार अमुक संप्रदाय के साधु भी साधुओं की देखा-देखी काम करते हैं, पर शुद्ध मान्यता और आचार के बिना कोई काम सिद्ध नहीं होता। ●

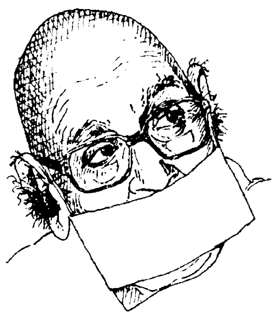

नैतिकता अध्यात्म का एक अंग है। अध्यात्म की उत्कृष्ट फलश्रुति है—समता। समत्व की अनुभूति आत्मा के ऊर्ध्वारोहण की स्थिति में होती है। इस अनुभूति में स्व और पर की संकीर्ण सीमाएं टूट जाती हैं, इस सार्वभौम और सार्वकालिक आदर्शरूपता को नकारा नहीं जा सकता। नैतिकता भी निरपेक्ष आदर्श के रूप में मान्य है, किंतु इसमें जो भिन्नता की प्रतीति होती है, उसका आधार है—व्यवहार। नैतिक और अनैतिक चेतना की अपनी निश्चित परिभाषा है, पर वह अमूर्त है। उसका मूर्त रूप है—मनुष्य का नैतिक और अनैतिक व्यवहार। अनैतिक व्यवहार एक देश में एक प्रकार के होते हैं और दूसरे देश में भिन्न प्रकार के हो सकते हैं।

अनैतिक चेतना भी कार्य-भेद से नाम-भेद पा लेती है। एक देश में एक प्रकार की अनैतिकता होती है और उसे मिटाने के लिए एक प्रकार के संकल्प सुझाए जाते हैं। दूसरे देश में भिन्न प्रकार की अनैतिकता को मिटाने के लिए दूसरे प्रकार के संकल्प कार्यकर होते हैं। देश, काल और परिस्थिति सापेक्ष नैतिकता का अर्थ उसके व्यावहारिक क्रियान्वयन से है। मूलतः नैतिक चेतना में इससे कोई अंतर नहीं आता।

नैतिकता के आदर्श मात्र आदर्श ही हों तो जीवन-विकास में उनका कोई योगदान नहीं हो सकता। आदर्श व्यवहार के धरातल पर अवतरित होकर ही उपयोगी हो सकते हैं। मेरे अभिमत से अव्यावहारिक आदर्श नैतिक मूल्यों की परिधि में आ ही नहीं सकते।

—आचार्यश्री तुलसी

अध्यात्म की साधना एक निरालंब मार्ग है। अध्यात्म स्वयं निरालंब है। अध्यात्म में किसी आलंबन की अपेक्षा नहीं है, किंतु अध्यात्म तक पहुंचने के लिए आलंबन आवश्यक है। अध्यात्म की यात्रा करने वालों ने, मन पर अनुशासन करने वालों ने आलंबनों को खोजा है। अध्यात्म-साधकों ने भी नाना आलंबनों की शरण ली है। अतः बहुत जरूरी है—आलंबन। जयाचार्यश्री ने तो आलंबनों की एक पूरी सूची प्रस्तुत की है। निरालंब तक पहुंचने में जिन आलंबनों की अपेक्षा है—उनमें संयम, तप, जप, शील, स्वाध्याय, अनित्य-अनुप्रेक्षा, अशरण-अनुप्रेक्षा, अनंत-अनुप्रेक्षा और निर्मल-ध्यान, ये मुख्य हैं। इन आलंबनों का उपयोग किए बिना कोई भी साधक निरालंब तक नहीं पहुंच सकता। अशुद्ध आलंबनों को छोड़ कर शुद्ध आलंबनों को स्वीकार करना—यह प्रथम नियम है। वासना अशुद्ध-आलंबन है और चेतना शुद्ध-आलंबन है।

शरीर के दो छोर हैं। एक है—कामना का और दूसरा है—चेतना। चेतना से भिन्न नहीं है—कामना। किंतु, जहां चेतना गौण हो जाती है, वहां कामना प्रधान बन जाती है। इसलिए कामना या वासना का एक ही छोर है। दूसरा छोर है—चेतना का। योग-शास्त्र में शरीर को चेतना की दृष्टि से दो भागों में बांटा गया है— 1. नीचे का भाग—जिसे मूलाधार या शक्ति केंद्र कहा जाता है और यह कामना या वासना का केंद्र है। 2. ऊपर का भाग—सिर का भाग, ज्ञानकेंद्र है। यह चेतना का केंद्र है।

अशुद्ध आलंबनों को छोड़ना और शुद्ध आलंबनों का सहारा लेना—यह ध्यान की प्रक्रिया का मूल है। इसका तात्पर्य है कि कामकेंद्र की ओर प्रवाहित होने वाली चेतना को ऊपर उठा कर ज्ञानकेंद्र में ले जाना। नीचे के प्रवाह को बदल कर, उसको ऊपर की ओर मोड़ देना। यह शुद्ध आलंबन की स्वीकृत है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है। इस प्रयत्न से सारी वृत्तियों का परिष्कार हो सकता है।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

अध्यात्म के आचार्यों ने आत्मशोधन को जीवन का एक लक्ष्य निर्दिष्ट किया है। आत्मा की शुद्धि के लिए अध्यात्म की, धर्म की आराधना की जाती है। धर्म की साधना करने के लिए महत्त्वपूर्ण साधन बनता है—शरीर। जब तक शरीर स्वस्थ है, यानी जब तक बुढ़ापा नहीं आता, व्याधियां नहीं बढ़तीं और इंद्रियों की शक्ति क्षीण नहीं होती—तब तक धर्म का आचरण किया जा सकता है।

एक प्रश्न उपस्थित हुआ कि व्यक्ति शरीर को धारण क्यों करे? उत्तराध्ययन सूत्र में समाधान दिया गया कि पूर्व-कर्मों के क्षय के लिए ही शरीर को धारण करें। शरीर को धारण करने का और उसको उचित आहार से पुष्ट रखने का एकमात्र उद्देश्य है कि पूर्व-संचित कर्मों का क्षय किया जा सके और संयम की साधना से नए कर्मों को रोका जा सके। शरीर-धारण का यह एक आध्यात्मिक लक्ष्य है।

शरीर को बनाए रखने के लिए अनेक पदार्थों की आवश्यकता होती है। उनमें एक है—भोजन। भोजन शरीर को पुष्ट रखने और टिकाने के लिए अति आवश्यक है। बिना भोजन के कुछ समय तो जीवन जीया जा सकता है, पर लंबे समय तक नहीं जीया जा सकता। अतः जीवन चलाने के लिए भोजन करना आवश्यक है, किंतु भोजन के साथ विवेक भी आवश्यक होता है। कब, किस समय, क्या, कितना और कौन-सा भोजन करना चाहिए, यह व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है।

उपवास यदि निर्जरा का समाधान बनता है तो भोजन भी निर्जरा का साधन बन सकता है। बशर्ते कि भोजन का उद्देश्य स्पष्ट हो। जीने के लिए भोजन किया जाए। भोजन के लिए न जीया जाए। निर्जरा के बारह प्रकार बताए गए हैं। उनमें पहला भेद है—अनशन। अनशन के भी दो प्रकार प्रज्ञप्त हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक। उपवास से लेकर छह महीनों तक की जो तपस्या की जा सकती है—वह इत्वरिक अनशन कहलाता है। जीवन-पर्यंत जो अनाहार की साधना स्वीकार की जाती है—वह यावत्कथिक अनशन कहलाता है। पर, अनशन की साधना सबके लिए स्वीकार्य नहीं हो सकती। यद्यपि मेरा अपना मंतव्य यह है कि उपवास जिस व्यक्ति के लिए अनुकूल रहे, उसे उपवास या एकांतर अवश्य करना चाहिए। किंतु, जिन व्यक्तियों के लिए उपवास अनुकूल नहीं रहता—उनके लिए 'ऊनोदरी-तप' बड़ा लाभदायी है। किसी ने पूछा कि पाचक दवा कौनसी होती है? उत्तर दिया गया कि सबसे पाचक दवा 'ऊनोदरी-तप' होता है। खाने में संयम रहेगा, तो पाचन अपने-आप ठीक होगा। 'ऊनोदरी-तप' अनेक दृष्टियों से भी लाभदायी होता है। स्वाध्याय, इंद्रि-संयम, कषाय-शमन आदि की साधना में भी 'ऊनोदरी-तप' योगभूत है। भोजन शास्त्र और धर्मशास्त्र में भोजन के विषय में अनेक नियम-उपनियम व्याख्यायित हैं। इन्हें देखना-समझना चाहिए।

—आचार्यश्री महाश्रमण

प्रसंग

समय का सन्नाटा

कहा जाता रहा है कि समय सबको सबक सीखा देता है। समय किसी का सगा नहीं, समय किसी को बख्शता नहीं। बात सही है। यह भी सही है कि समय को समझ कर चलने और व्यवहार करने की बात तात्कालिक सुख या लाभ के लिए होती तो दिख जाती है, पर समय की परवाह कौन करता है? समय की नब्ज को पहचानने की कुव्वत हर किसी में नहीं होती और जिनमें होती है, उनके कहे का असर भी किसी पर होता है—यह समझना जरूरी है।

समय सबकुछ बहा ले जाता है—यह भी हम कहते, सुनते और देखते आए हैं। अभी जापान में जो कहर बरपा है, वह ताजा घटना है। वहां सबकुछ बह गया समय की धार में। भूकंप और सुनामी के बाद परमाणु 'रिएक्टर्स' में आई भारी टूट-भांग तथा उसके कारण हो रही 'रेडियो-धर्मिता' जापान में क्या बचा छोड़ेगी, कहना कठिन है। वह जापान, जो प्रौद्योगिकी की दृष्टि से सबसे अधिक विकसित माना जाता रहा है—वहां अब सन्नाटा पसरा है। जापान का सेंदाइ प्रांत तथा उत्तर-पूर्वी जापान के फुकुशिमा, ओनागावा और तोकाई परमाणु केंद्रों की हकीकत जो बयान करती है, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि दुनिया की इस महान आर्थिक शक्ति को समय के एक झटके ने किस तरह धूल-धूसर कर डाला है।

हम 6 अगस्त, 1945 की घटना को याद करें, जब हीरोशिमा पर अणुबम का विस्फोट हुआ। कहा गया कि वह प्रयोग था। प्रयोग की उस घटना को इस साल (2011 ई.) अगस्त महीना आते-आते छियासठ साल पूरे हो जाएंगे। अभी जो भूकंप, सुनामी और परमाणु विध्वंस हुआ है (उसकी शुरुआत ग्यारह मार्च, 2011 से हुई), इसका अंत कब होगा—यह बताना कठिन है, पर छियासठ साल पहले 6 अगस्त, 1945 को मात्र प्रयोग के रूप में जो अणुबम विस्फोट हुआ था, उसके नश्तर और रिसते घावों का दर्द अभी तक कोई भूला नहीं है। इस विस्फोट के बाद और भी कई घटनाएं विश्व में हुईं, पर दुनिया के तलपट में वे दर्ज भर होकर रह गईं। 'चेरनोबिल' (रूस) और 'थ्री माइल आइलेंड' (अमेरिका, सन् 1979) की भयानक घटनाओं से भी किसी प्रकार का सबक दुनिया के नीति-निर्धारकों ने नहीं लिया।

जिस फुकुशिमा केंद्र की तबाही ने अभी जापान में दहशत पैदा की है, चालीस साल पहले उसके निर्माण के समय ऐसी सुनामी और भूकंप की कल्पना भी नहीं की गई थी। जापान के प्रधानमंत्री नाओती कान यह मान रहे हैं कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद घटित जापान की यह त्रासदी उसके लिए सबसे बड़ा संकट है। उन्होंने परमाणु आपातकाल की घोषणा भी कर दी है और दो लाख से अधिक लोगों को (यह आंकड़ा घटना के चार दिन बाद का है, पर इस 'प्रसंग' को पढ़ने के समय तक यह संख्या कितनी अधिक पहुंच चुकी होगी, पता नहीं) परमाणु दुर्घटना त्रस्त इलाकों से बाहर निकाला जा चुका है, पर विकिरण (रेडिएशन) कितना भयंकर है, इसका अनुमान नहीं लगाया जा पा रहा है। पर्यावरणविदों और नागरिक समूहों ने घटना के पहले तीनों दिनों में मापा है कि विकिरण छ सौ किलोमीटर तक फैल गया है।

जापान में यह घटना पहली नहीं है। भूकंप तो वहां आते ही रहते हैं। सन् 1995 में 'हानशिन भूकंप' की याद जापानवासियों को तो है ही, दुनिया के अन्य लोगों को भी होगी। तब नुकसान का आकलन एक सौ खरब

येन (भारतीय मुद्रा में यह राशि कितनी होगी, कृपया पाठक गणना करके देखें) किया गया था। इसी तरह 'तोहोकु भूकंप' की घटना भी भुलाई नहीं जा सकती है। ये भूकंप जापान के लिए जानलेवा सिद्ध हुए थे, पर सबक के रूप में इतना भर सीखा कि जापान को पुनः सशक्त होना है। पर, सशक्त किस रूप में होना होगा और क्या वह पर्याप्त होगा?

दरअसल दुनिया की सरकारों के लिए लीपापोती और झूठ सामान्य बात होने लगी है। जैसे कि सरकारें यह समझने लगी हैं कि ये आपदाएं उन्हीं की बदौलत हैं। सब जानते हैं कि इन आपदाओं की वजह सही नीतियों के निर्धारण का अभाव तथा घटनाओं से सबक न लेना है, सीख नहीं लेना है। कभी-कभार कुछ कार्रवाई हो जाती है, जैसे सन् 2002 में एक मामले में 'टोकियो इलेक्ट्रिक पावर कंपनी' (जापान) के अध्यक्ष को इस्तीफा देना पड़ा। पर, इससे नीतिगत बदलाव क्या आया?

एक ओर घटनाओं से सबक नहीं लेना तथा परिस्थितियों से सीख न लेने की बात है, तो दूसरी ओर विनाश की भरपाई को मात्र 'आर्थिक सशक्तता' के पैमाने पर ही देखा जाता है। ऐसी आपदाओं के बाद आर्थिक रूप से फिर से सशक्त हो जाना ही पर्याप्त मान लिया जाता है, पर इन घटनाओं में जो लाखों जिंदगियां असमय में ही काल-कवलित हो जाती हैं—क्या उस ओर कोई ध्यान दिया जाता है? नहीं।

हम आज भी मानते हैं कि भारत ऋषि-मुनियों का देश है। पर, भारत ऐसे राजनयिकों का भी देश है—जहां शांति, एकत्व और सौहार्द की बात हमेशा की जाती रही है। इस दृष्टि से हमारे सम्मुख केवल गांधी और विनोबा ही नहीं हैं, सी. राजगोपालाचारी जैसे ऐसे व्यक्ति भी हैं जो 'संत' की श्रेणी में नहीं रखे जाते। वे क्या सोचते रहे, वह आज काफी मानीखेज है। सी. राजगोपालाचारी ने सन् 1955 (26 नवंबर, 1955) में दिल्ली विश्वविद्यालय के एक दीक्षांत भाषण में परमाणु अस्त्रों को लेकर गहरी चिंता प्रकट की थी। अपने विषाद भरे भाषण में वे स्पष्ट संकेत करते हैं कि दुनिया की 'राष्ट्रीय शक्तियां' यदि इन अस्त्रों को त्यागने के लिए तैयार नहीं हुईं तो ये शक्तियां मानवीय सभ्यता का अंत कर देंगी। न केवल राजगोपालाचारी, अणु-अस्त्रों के निर्माण में लगे वैज्ञानिकों ने भी इसके भयानक परिणामों के बारे में बताया है।

बर्ट्रेंड रसेल जैसे महान विचारक अपनी एक नव प्रकाशित पुस्तक में (संभवतः साठ के दशक में) यहां तक लिख चुके हैं—'मानवीय दुखों में इतनी वृद्धि पहले कभी नहीं हुई थी, जितनी पिछले पचीस वर्षों में हुई है।'—इसी पुस्तक में वे आगे लिखते हैं—'यंत्रों के नवीन विकास से प्रतीत होता है कि हम अब तक जो हुआ है, उसे भी पीछे छोड़ जाएंगे। यह बात अक्षरशः सत्य है कि यदि मनुष्य जाति ने विनाश के सभी संभव साधनों का अनुचित और पूरा लाभ उठाया तो संसार से उसका सर्वथा लोप हो जाएगा।'—दुर्भाग्य से ऐसा दिन देखने के लिए मनुष्य बचेगा भले नहीं, पर इस अनुमान से हो रही थर्राहट का एहसास तो हम आज कर ही सकते हैं।

यह एक गंभीर विचारणीय मसला है और इसके लिए पहल निश्चय ही भारत से होनी चाहिए। यद्यपि भारत भी परमाणु ऊर्जा के नाम पर महंगे और खतरनाक स्रोत से बचा हुआ नहीं है। भारत भी पहले से चल रहे 'कलपक्कम ऊर्जा केंद्र' से लेकर बंगाल के हरिपुर, आंध्र के कोवाडा, गुजरात के मीठीविडी और महाराष्ट्र के जैतापुर के प्रस्तावित केंद्रों का जनक बनना चाहता है। हमारे प्रधानमंत्री ने तारापुर आदि केंद्रों से किसी भी खतरे की संभावना से इंकार करते हुए आश्वस्त भी किया है। राजस्थान के मुख्यमंत्री ने भी रावतभाटा आदि केंद्रों के लिए इसी तरह आश्वस्त किया है। पर, क्या घटनाओं से सबक भी लिया है? इस ओर सन्नाटा ही नजर आ रहा है।

भारत से यह अपेक्षा स्वाभाविक है कि वह 'समय के इस सन्नाटे' को पहल करके तोड़े। इस दिशा में महावीर और बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने जो कुछ कहा है—हमारे लिए वह मार्गदर्शक हो सकता है। हमें उनके कथनों की मार्मिकता को समझना चाहिए। यह संयोग है कि भगवान महावीर की 2610वीं जयंती (16 अप्रैल, 2011) और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का पहला परिनिर्वाण (28 अप्रैल, 2011) इसी अप्रैल माह में है। श्रमण महावीर के संदर्भ से आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने तो कहा भी है कि—'यदि हमें अपना अस्तित्व प्रिय है, तो दूसरों के अस्तित्व में दखल मत दो।'—बुनियादी बात यही है। इसके मर्म को समझ कर हमें अपने इस विकट समय से सबक लेने की जरूरत है। अन्यथा समय का यह सन्नाटा हम सबको लील लेगा।

—शुभू पटवा

[सात अप्रैल का दिन 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' है, जैन भारती के इसी अंक में पृष्ठ 11 पर प्रकाशित आलेख भी पठनीय है—सं.]

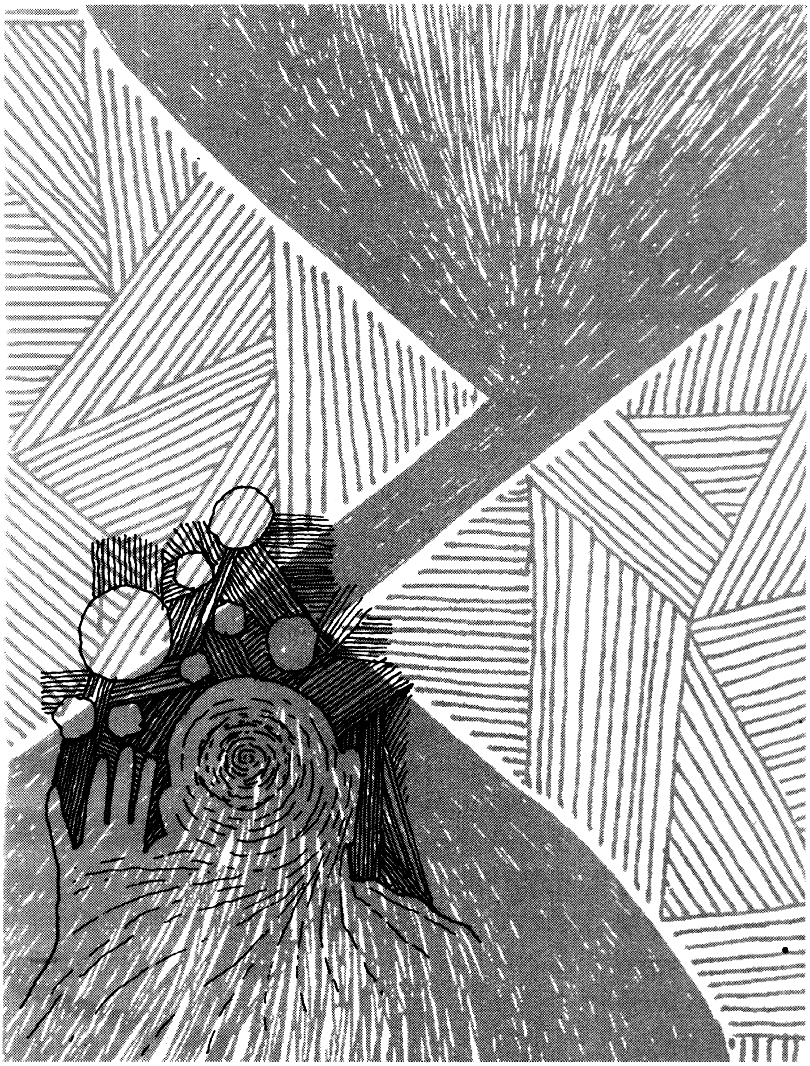

विमर्श

आत्मा के धर्म के विषय में अनेक प्रश्न उठते हैं। यदि आत्मा के स्वयंप्रकाश होने से यह उपपत्ति निकाली जाए कि इसकी पृथक सत्ता है और ज्ञान, सत्ता और आनंद इसके धर्म हैं, इससे उसका होना माना जाए तो इससे यह आता है कि आत्मा की सृष्टि नहीं हुई है, वह नित्य है। स्वयंप्रकाश सत्ता—अन्य सत्ता की निरपेक्ष सत्ता—कभी अन्य सत्ता से उत्पन्न नहीं हो सकती। यह नित्य है। ऐसा कोई समय न था, जब वह न रही हो। कारण यह है कि जब आत्मा ही थी, तब काल कहां था? काल तो आत्मा में ही है, जब आत्मा अपना बल मन को देती है और मन विचार में प्रवृत्त होता है तभी काल की उत्पत्ति होती है। जब आत्मा ही न थी, तब विचार कहां और विचार के बिना काल कहां? फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि आत्मा काल में है, जब काल स्वयं आत्मा में है? न इसकी उत्पत्ति है, न विनाश है—तो यह सभी अवस्थाओं में बनी रहती है। यह धीरे-धीरे अभिव्यक्त होती रहती है और नीची दशा से ऊंची दशा को प्राप्त होती जाती है। यह अपनी महिमा को प्रकाशित करती जाती है और मन के द्वारा शरीर पर काम करती है, शरीर द्वारा बाह्य विषयों को ग्रहण करती है और उनको अपने बोध में लाती है। यह शरीर धारण करती है और शरीर से काम लेती है और जब शरीर काम के योग्य नहीं रह जाता और निकम्मा हो जाता है तब यह दूसरा शरीर धारण करती है और इसी प्रकार करती जाती है।

—स्वामी विवेकानंद

संदर्भ

❁ विश्व स्वास्थ्य दिवस ❁

❑ 7 अप्रैल ❑

आरोग्य-शास्त्र : भाव विशुद्धि और पवित्रता

❁ आचार्यश्री महाप्रज्ञ ❁

सुख और दुख जीवन के दो प्रमुख घटक हैं। सुख के जो अनेक प्रकार बतलाए गए हैं, उनमें एक प्रमुख प्रकार है—आरोग्य। आरोग्य का सुख के साथ गहरा संबंध है। इसी तरह दुख के भी अनेक प्रकार बतलाए गए हैं। उनमें एक प्रकार है—रोग। आरोग्य सुख है और रोग दुख है। रोग दुख है, इसीलिए कोई रोगी बनना नहीं चाहता। फिर व्यक्ति रोगी बनता क्यों है? शरीर का कौन-सा अवयव रोगी बनता है? हमारे सामने विमर्शनीय विषय यह है कि क्या हम अवयव और अवयवी को पृथक मानें? इन्हें सर्वथा अलग-अलग मानें?

रुग्ण कौन है? अंग है या अंगी? एकांत दृष्टि से विचार करने पर इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलेगा। अनेकांत की दृष्टि से अवयव और अवयवी को पृथक नहीं किया जा सकता, एक भी नहीं माना जा सकता।

> *“पूछा गया—'भंते! मन की एकाग्रता से क्या होता है?'—महावीर ने कहा—'मन की एकाग्रता से चित्त का निरोध होता है।'—मन को एकाग्र करो, चित्त का निरोध हो जाएगा। चित्त की जो वृत्तियां उभरती हैं, उन वृत्तियों में पवित्रता आ जाएगी। यह जरूरी है कि भीतर से जो आने वाला है, उस पर ध्यान दें। हम अधिकांशतः चिकित्सा के क्षेत्र में बाह्य हेतुओं पर ही ज्यादा ध्यान देते हैं। बाह्य और अंतरंग—दोनों हेतु होते हैं। बीमारी का बाहरी हेतु हमारे सामने स्पष्ट है। इसके साथ अंतरंग हेतु पर भी ध्यान दें।*
> *यदि इस पर समग्रता से ध्यान दिया जाए तथा मन से भी आगे, भाव की विशुद्धि और पवित्रता तक पहुंच जाएं तो आरोग्य-शास्त्र को एक नई उपलब्धि हासिल हो सकती है, चिकित्सा के क्षेत्र में एक अभिनव विकास हो सकता है।”*

रोगी बनता है पूरा शरीर

भगवती सूत्र का एक प्रसंग है। भगवान महावीर ने गौतम से पूछा—'यह जो गाड़ी का पहिया है, यह पूर्ण है अथवा खंडित है? यह खंड छत्र है, या पूरा छत्र है?'—गौतम ने कहा—'भंते! जो खंड है, वह चक्का नहीं है और जो खंड है, वह छत्र भी नहीं है। जब वह पूर्ण बन जाता है, तभी वह चक्र और छत्र है।'

हमारा सारा शरीर भी परिपूर्ण है। हम इसके किसी अवयव को बांट कर नहीं देख सकते। अतः पूरा शरीर ही रोगी बनता है। एक परमाणु दूसरे परमाणु का स्पर्श करता है, तो वह किस प्रकार करता है? क्या एक परमाणु दूसरे परमाणु का देशतः स्पर्श करता है? या सर्वात्मना स्पर्श करता है? उत्तर मिलता है—सर्वात्मना स्पर्श करता है, देशतः स्पर्श नहीं करता। इस प्रकार के अनेक प्रश्न हैं, जिनके उत्तर में भगवान महावीर ने कहा—रोग होता है, वह समग्र शरीर को होता है। वह एक अवयव को नहीं छूता, पूरे शरीर को छूता

है। वह प्रकट एक अवयव पर होता है। घुटने का दर्द है या सिर का दर्द—वह केवल घुटने या सिर का रोग नहीं हो सकता। पूरे शरीर पर वह रोग हुआ है।

दुखी कौन

इस बारे में एक और सिद्धांत है। महावीर से पूछा गया—दुखी दुख से स्पृष्ट होता है या अदुखी दुख से स्पृष्ट होता है? महावीर ने कहा—जो दुखी है, वह दुख से स्पृष्ट होता है और जो दुखी नहीं है, वह कभी दुख से स्पृष्ट नहीं होता। इस सूत्र को आयुर्विज्ञान की भाषा में या वर्तमान रोग पद्धति की भाषा में इस प्रकार कहा जा सकता है—जिसकी रोग-प्रतिरोधक शक्ति प्रबल है, वह दुख से पीड़ित नहीं होता। जिसकी रोग-निरोधक शक्ति क्षीण हो गई, प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो गई—वह रोग से पीड़ित होता है। जिसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति विशिष्ट है और जीवेषणा शक्तिशाली है—उसके चारों ओर कीटाणु या विषाणु चक्कर भले ही लगाते रहें, पर वह रोग से स्पृष्ट नहीं होता।

व्यक्ति कौन : कौन-सा रोग

हम महावीर के दृष्टिकोण को इन दृष्टिकोणों से समझने का प्रयत्न करें। अनेकांत का सिद्धांत है—अवयव को अवयवी से पृथक मत मानो। अगर पृथक मानोगे तो वह अलग इकाई बन जाएगी। कोई भी अवयव स्वतंत्र इकाई नहीं है। अवयव और अवयवी दोनों जुड़े हुए हैं। रोग की मीमांसा करते समय केवल घुटने के दर्द को मत देखो, केवल सिर के दर्द को मत देखो, केवल किसी अवयव विशेष के दर्द को मत देखो। यह देखो कि उसके पीछे क्या है। इस स्थिति में दो रूप हमारे सामने आते हैं। पहला रूप यह है कि रोगी को किस प्रकार का रोग है? दूसरा रूप यह है कि किस प्रकार के रोगी को कौन-सा रोग है? दोनों में बहुत अंतर आ गया है। रोगी के कौन-सा रोग? इस भाषा में हम रोग को देखते हैं और रोगी को बिल्कुल गौण कर देते हैं। जहां हम देखते हैं कि किस प्रकार के रोगी को कौन-सा रोग है, वहां रोगी सामने आता है और रोग प्रमुख नहीं रहता। अनेकांत का सिद्धांत है—जहां एक प्रधान होता है, वहां दूसरा गौण हो जाता है। जहां रोग को प्रधानता देते हैं, तो वहां रोगी गौण हो जाता है। जहां रोगी को प्रधानता दी जाती हैं, तो वहां रोग गौण हो जाता है। जहां अवयवी है, वहां अवयव गौण हो जाता है और जहां अवयव प्रधान है, वहां अवयवी गौण हो जाता है। ये दोनों पहलू हमारे सामने हैं।

शरीर से भी आगे देखें

प्रश्न है—क्या हम शरीर को ही देखें? अथवा अवयवी को ही देखें? यदि महावीर के दृष्टिकोण को समझना है, तो इतने से ही काम नहीं चलेगा। इससे और आगे जाना होगा। शरीर को देखो, तो शरीर के साथ जो विद्युत-शरीर जुड़ा हुआ है, जो तैजस शरीर है—उसे भी देखो। प्राणशक्ति कैसी है? तैजस शरीर कितना शक्तिशाली है? उससे भी आगे यह देखो कि सूक्ष्म-शरीर कैसा है? कर्म का उदय कैसा है? स्थूल अवयव, स्थूल शरीर, सूक्ष्म-शरीर और सूक्ष्मतम शरीर—इन सबको देखो। इनके साथ मन को देखो, भाव को देखो, चित्त को देखो। चित्त को देख कर सही निदान कर पाओगे, सही चिकित्सा कर पाओगे। इन सबको अलग-अलग बांट दिया जाए तो सही बात प्राप्त नहीं होगी। यद्यपि विशेषज्ञता की दृष्टि से बांटा भी जाता है, विभक्त भी किया जाता है।

एक डॉक्टर 'सर्जन' है और एक डॉक्टर 'फिजीशियन' है। एक चीरफाड़ करता है, 'ऑप्रेशन' करता है और दूसरा सामान्य चिकित्सा करता है। 'सर्जरी' का विभाग अलग है और सामान्य चिकित्सा का विभाग अलग है। इन विभागों की उपयोगिता भी है। किंतु, समग्रता की दृष्टि से देखें तो ये सब विभक्त नहीं हो सकते। एक व्यक्ति ने निदान कराया, चिकित्सा कराई और दवाई लेते-लेते थक गया। वह कहता है—अब मैं दवा नहीं लूंगा और डॉक्टर भी कहता है कि तुम्हें कोई बीमारी नहीं है। उस स्थिति में यदि वह मानसिक चिकित्सक का परामर्श लेता है, तो लाभ हो सकता है। उससे भी आगे यदि वह भावनात्मक चिकित्सा की पद्धति में चला जाए तो उसको समाधान मिल सकता है।

इस दृष्टि से दो बिंदु बन जाते हैं। एक समग्र चिकित्सा की पद्धति और दूसरी विभक्त चिकित्सा की

पद्धति। कहीं पर खंडित चिकित्सा की पद्धति का भी उपयोग होता है।

दुख का पांचवां प्रकार

आचार्यों ने दुख के चार प्रकार बतलाए—सहज दुख, शारीरिक दुख, मानसिक दुख और आगंतुक दुख। अकस्मात दुर्घटना हो गई, 'एक्सीडेंट' हो गया—यह आगंतुक दुख है। किसी ने पत्थर मारा, चोट लग गई—यह आगंतुक रोग है। इसका न शरीर से संबंध है और न मन से संबंध है। एक होता है—सहज दुख। भूख और प्यास का लगना एक पीड़ा है। संस्कृत के काव्यकारों ने कहा—**क्षुज्जठराग्निजा पीड़ा**—जठराग्नि से पैदा होने वाली पीड़ा है—भूख।

शरीर में उत्पन्न होने वाले रोग शारीरिक दुख हैं। मन पर आघात लगने से जो दुख होता है—वह मानसिक दुख है। मन पर अकस्मात चोट लगती है, व्यक्ति दुखी बन जाता है। इस प्रकार दुख का पांचवां प्रकार हो सकता है—भावनात्मक दुख। वह दुख, जिसका मन से कोई संबंध नहीं है।

सामान्यतः यह नियम भी है और यह माना भी जाता है कि मस्तिष्क का हमारे पूरे शरीर पर नियंत्रण है। प्रश्न होता है—फिर मस्तिष्क पर किसका नियंत्रण है? कहा जाता है कि मस्तिष्क पर मन का नियंत्रण है। पर, यह बात सही नहीं लगती। मस्तिष्क पर मन नियंत्रण नहीं कर सकता। फिर मन पर नियंत्रण किसका है? कहा जाता है—भाव का। भाव का मस्तिष्क से, 'हाइपोथेलेमस' से बहुत गहरा संबंध है। 'हाइपोथेलेमस' बहुत संवेदनशील होता है। वह भावनाओं को पैदा करता है।

वस्तुतः मस्तिष्क पर मन का भी नियंत्रण नहीं है, भाव का भी नियंत्रण नहीं है। तब अनेकांत की दृष्टि से फलित होता है कि मस्तिष्क पर नियंत्रण है—चित्त का। इसी आधार पर एक शब्द बनता है—'साइकासोमेटिक'—मनोकायिक बीमारी। वास्तव में मनोकायिक बीमारी नहीं, पर चैत्तिक-कायिक रोग है। हमारे इस शरीर में सबसे ज्यादा नियामक, संचालक है—'साइक', चित्त। चित्त मस्तिष्क पर नियंत्रण करता है और मस्तिष्क मन पर, भाव पर, शरीर पर और शरीर की हर क्रिया पर नियंत्रण करता है।

रोगी को देखें

इस संदर्भ में यह सिद्धांत महत्त्वपूर्ण है कि रोगी को देखो, रोग को मत देखो। रोगी की चिकित्सा करो, रोग की चिकित्सा मत करो। अवयवी की चिकित्सा करो, अवयव की चिकित्सा मत करो। हम समग्रता की दृष्टि से विचार करते हैं, मन और भावना पर विचार करते हैं—तो अनेक रोगों की गहराई तक पहुंचने का अवसर मिल सकता है। एक व्यक्ति हृदय रोग से पीड़ित है। एक व्यक्ति के आमाशय में कैंसर है। एक व्यक्ति मधुमेह की बीमारी से पीड़ित है। ये सभी भयंकर बीमारियां हैं। यदि हम केवल शरीर के आधार पर ही इनकी चिकित्सा करना चाहेंगे, तो बड़ी त्रुटि हो जाएगी। हमें भावना तक जाना होगा। रोगी किस भावना वाला है—इस दृष्टि से रोग पर विचार करेंगे तो शायद बहुत जल्दी चिकित्सा होगी और रोगी भी बहुत जल्दी ठीक हो सकता है।

यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि किस प्रकार के रोगी को किस प्रकार का रोग है। जिसका मनोबल प्रबल है, जिसमें आत्मा की पवित्रता है—वह रोग पर अल्प समय में विजय पा लेता है और जिसका मनोबल कमजोर हुआ है, भावना मलिन है, आत्मबल भी नहीं है—उसके दस दिन में मिटने वाला रोग दस महीनों में भी नहीं मिटेगा, दस वर्ष में भी नहीं मिटेगा। अतः यह निर्णय करना जरूरी है कि किस प्रकार के रोगी को किस प्रकार का रोग है। केवल रोग के आधार पर चिकित्सा नहीं हो सकती। समग्रता की दृष्टि से दोनों को एक साथ देखना होता है। रोगी का शरीर कैसा है, उसकी प्राणशक्ति कैसी है, उसका आध्यात्मिक बल कैसा है, उसका कर्म-शरीर कैसा है? भाव कैसा है? मन का बल कैसा है? इन सबको मिलाकर निर्णय हो, तो वह निर्णय समीचीन होगा। अन्यथा सही निर्णय नहीं हो सकता।

ऐसे बहुत लोग हैं, जो कहते हैं कि अनेक प्रकार से निदान करा लिया, पर बीमारी का पता नहीं चला। पता क्यों नहीं चलता? एकांतवादी दृष्टिकोण ही इसका कारण प्रतीत होता है। यदि अनेकांतवादी दृष्टिकोण हो

तो बीमारी का पता चल सकता है। 'ओर्गेन' (अवयव) पर कोई बीमारी है, तो यंत्र बता देगा। बीमारी के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। इससे आगे भी देखना होगा कि भाव और मनोबल कैसा है? जिस व्यक्ति में यह प्रबल भावना बन जाती है कि मेरे रोम-रोम में आनंद प्रवाहित हो रहा है, वह फिर दुख और निराशा का अनुभव नहीं करेगा। रोग किसी भी कारण से बना हो, वह रोग टिक नहीं पाएगा। उसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति इतनी प्रबल बन जाती है कि वहां रोग के टिके रहने वाली स्थिति नहीं रह पाती।

अरोगी के रोग नहीं होता

हम इस प्रसंग में रोग को रोकने पर विचार करें। 'एलोपैथिक' चिकित्सा पद्धति में विषाणु, 'वायरस' आदि-आदि रोग के आगंतुक तत्त्व माने जाते हैं। दुर्घटना की बात छोड़ दें, तो शरीर में होने वाले रोगों के मुख्य हेतु ये ही माने जाते हैं। 'होम्योपैथी' इसका अलग कारण मानती है। प्राकृतिक-चिकित्सा वाले बीमारी का एक ही कारण मानते हैं—हमारे उदर में जो विजातीय तत्त्व हैं या शरीर में जो विजातीय तत्त्व हैं, उन विजातीय तत्त्वों का इकट्ठा होना बीमारी है और विजातीय तत्त्वों का अलग होना आरोग्य है। अलग-अलग दृष्टिकोण है।

हम महावीर को सामने रख कर रोग के हेतुओं पर विचार करें तो सबसे पहले इस बिंदु पर जाना होगा कि दुखी दुख का अनुभव करता है और यह मानना होगा कि यह रोगी है, पर अरोगी के रोग नहीं हो सकता। रोगी के ही रोग होता है। एक रोग है, जो व्यक्त हो रहा है। एक रोग वह है, जो भीतर में है और व्यक्त नहीं हो रहा है। उस रोग का मूल हेतु है—भाव जगत। क्रोध, अहंकार, कपट, दुख, भय, घृणा—यह जो सारा भाव जगत है—व्यक्ति को रोगी बनाए हुए है। भाव जगत व्यक्ति को निरंतर रोगी बनाए रखता है और जो व्यक्ति रोगी हो गया है, उसकी जीवनी शक्ति भी कमजोर ही रहेगी।

अध्यवसान और स्वास्थ्य

इस प्रकार यह नियम बनाया जा सकता है कि कषाय-चक्र जितना उपशांत, उतना कम रोगी। कषाय-चक्र जितना प्रबल, उतना ही अधिक रोगी। ऐसी घटनाएं हमने देखी और सुनी हैं कि कषाय की प्रबलता व्यक्ति के विनाश का कारण बन जाती है। एक युवा शरीर में बहुत भयंकर क्रोध आया और चालीस वर्ष का वह युवक दो घंटे में चल बसा। ऐसा क्यों हुआ? इस संदर्भ में महावीर का एक शब्द स्मृति में रखें—अध्यवसान। रोग का एक हेतु बनता है—अध्यवसान। व्यक्ति की सूक्ष्म चेतना कैसी है? मस्तिष्कीय चेतना नहीं, भीतर की सूक्ष्म चेतना कैसी है? अध्यवसान प्रशस्त है, तो स्वास्थ्य भी प्रशस्त होगा। अध्यवसान अप्रशस्त है, तो स्वास्थ्य भी अप्रशस्त होगा। अप्रशस्त अध्यवसान भीतर में रहेगा, तो बीमारी को बढ़ने का मौका मिल जाएगा। अप्रशस्त अध्यवसान में व्यक्ति बीमारी से जल्दी आक्रांत हो जाता है। यदि प्रशस्त अध्यवसान हो, तो चाहे सर्दी का मौसम आए, गर्मी या बरसात का मौसम आए, कीटाणु अथवा जीवाणु कुछ भी आएं—शरीर पर प्रबल आक्रमण नहीं हो पाएगा।

संदर्भ कर्म का

इस विषय में कर्म सिद्धांत की एक व्यवस्था को समझना जरूरी है। कर्म का सिद्धांत—**सर्वात्मना सर्व-सव्वेणं सव्वे**—का सिद्धांत है। एक व्यक्ति घृणा करता है, उससे मोहनीय कर्म का बंध होता है। क्योंकि वह मोह के कारण ही घृणा करता है। बंध होगा मोहनीय कर्म का, किंतु उसके साथ सात या आठ कर्म का बंध हो जाएगा। अगर आयुष्य का बंध न हो, तो सात कर्म का बंध होगा। उसमें रोग भी है, सात वेदनीय भी है, असात वेदनीय भी है। इतना अवश्य है कि यदि वह घृणा करता है, ईर्ष्या करता है तो मोहनीय कर्म को उसका भाग ज्यादा मिल जाएगा। अन्य सब सहायक कर्मों को कम हिस्सा मिलेगा। इसका तात्पर्य है—कर तो रहा है घृणा और बंध होगा मोहनीय कर्म का। साथ में ज्ञान के आवरण का भी बंध होगा। दर्शनावरणीय और वेदनीय का भी बंध होगा। सबका बंध होगा। सबका हिस्सा अपना-अपना हो जाएगा और मुख्य हिस्सा मोहनीय कर्म का हो जाएगा। कर्म की जैसे व्यवस्था है, वैसे ही रोग की व्यवस्था भी है। एक आदमी रोगी बना, सिर का दर्द हुआ। जिस निमित्त से दर्द हुआ, उसे दर्द का ज्यादा हिस्सा मिल गया। किंतु, दर्द केवल वहीं नहीं हुआ, पूरे शरीर में हुआ। यह संभव है कि मेरुदंड या अन्य स्थान पर हम अनुभव न कर सकें।

हमारे पास कोई सूक्ष्म यंत्र हो तो पता लगेगा कि केवल सिर में ही दर्द नहीं है। उस स्थान को ज्यादा हिस्सा मिला है, इसलिए वहां दर्द ज्यादा हो गया है।

अगर हम इन बिंदुओं को ध्यान में रख कर स्वास्थ्य की मीमांसा करेंगे, तो हमारे सामने कुछ नए निष्कर्ष निकल आएंगे। यदि आरोग्य का विकास करना है, तो केवल शरीर पर ध्यान मत दो, मन पर भी ध्यान दो, भावना पर भी ध्यान दो। मन और भावना का संचालन करने वाला मस्तिष्क है, अतः उस पर भी ध्यान दो। यदि हम ऐसा कर पाएं तो महावीर की बात पूरी समझ में आ जाए।

आभामंडल को पहचानें

पूछा गया—'भंते! मन की एकाग्रता से क्या होता है?' —महावीर ने कहा—'मन की एकाग्रता से चित्त का निरोध होता है।'—मन को एकाग्र करो, चित्त का निरोध हो जाएगा। चित्त की जो वृत्तियां उभरती हैं, उन वृत्तियों में पवित्रता आ जाएगी। यह जरूरी है कि भीतर से जो आने वाला है, उस पर ध्यान दें। हम अधिकांशतः चिकित्सा के क्षेत्र में बाह्य हेतुओं पर ही ज्यादा ध्यान देते हैं। बाह्य और अंतरंग—दोनों हेतु होते हैं। बीमारी का बाहरी हेतु हमारे सामने स्पष्ट है। इसके साथ अंतरंग हेतु पर भी ध्यान दें।

यदि इस पर समग्रता से ध्यान दिया जाए तथा मन से भी आगे, भाव की विशुद्धि और पवित्रता तक पहुंच जाएं तो आरोग्य-शास्त्र को एक नई उपलब्धि हासिल हो सकती है, चिकित्सा के क्षेत्र में एक अभिनव विकास हो सकता है।

जैसे हम मस्तिष्कीय तरंगों का मापन करते हैं, वैसे ही आभामंडलीय उपकरणों के द्वारा भाव का मापन भी हो सकता है। आभामंडल को पकड़ने के लिए कुछ प्रयत्न हो रहे हैं। ऐसे यंत्र भी विकसित हुए हैं, जिनसे पता लग जाता है कि आभामंडल का रंग कैसा है। इसी आधार पर बीमारी के मूल तक पहुंचने का भी पता लग सकता है।

समग्रता का दृष्टिकोण

स्वास्थ्य के लिए जिन तीन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया, वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं—अवयव विशेष नहीं, पूरा शरीर रोगी बनता है। रोगी ही रोग से ग्रस्त होता है, अरोगी कभी रोग से ग्रस्त नहीं होता। रोग सर्वात्मना होता है, आंशिक रूप में नहीं। इन तीनों सिद्धांतों की अनेकांत के आधार पर मीमांसा करें, तो रोगी और रोग को समझने में बहुत सुविधा होगी और यदि रोगी को नहीं पकड़ पाएंगे, तो रोग की चिकित्सा बहुत जटिल हो जाएगी।

यह समग्रता का दृष्टिकोण है। यदि चिकित्सा के क्षेत्र में अनेकांत का यह दृष्टिकोण व्यापक हो जाए, तो पूरी मानवजाति को यह एक नया अवदान हो सकता है। ❖

घर-परिवार और मित्र-परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर **'जैन भारती'** उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक-नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म-दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, **'जैन भारती'** अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती
एक संपूर्ण पत्रिका है।
वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए
जैन भारती
पढ़ें—सबको पढ़ाएं

व्यवस्थापक
जैन भारती
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401

साधना के दो आधार : काय-समाधारणा ; मन-समाधारणा

आचार्यश्री महाश्रमण

यह शरीर हमारा नौकर है। हम नौकर का ठीक उपयोग करें और यह ध्यान रखें कि कहीं वह गलत कामों में न लग जाए। नौकर का ध्यान न रखा जाए तो कभी-कभी वह मालिक को धोखा देने वाला, लूटने वाला और मारने वाला भी हो सकता है। इसलिए नौकर के प्रति सावधानी रखनी चाहिए। नौकर विश्वस्त है या नहीं—यह ध्यान भी देना चाहिए। अन्यथा घर का भेदी बन कर वही आपके लिए खतरा पैदा करने वाला भी बन सकता है।

इसी संदर्भ में एक प्रश्न किया गया—'**कायसमाहारणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?**—भंते! काय-समाधारणा से और संयम योगों में काय को भली-भांति लगाने से जीव क्या प्राप्त करता है?' उत्तर दिया गया—'**कायसमाहारणयाए णं चरित्तपज्जवे विसोहेइ, विसोहेता अहक्खायचरित्तं विसोहेइ, विसोइत्ता चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेई। तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ**—काय-समाधारणा से वह चरित्र-पर्यवों, चरित्र के विविध आयामों को विशुद्ध करता है। चरित्र-पर्यवों को विशुद्ध कर यथाख्यात चरित्र वीतरागभाव को प्राप्त करने योग्य विशुद्धि करता है। यथाख्यात चरित्र को विशुद्ध कर केवली चार कर्मों—वेदनीय, आयुष्य, नाम और गौत्र को क्षीण करता है। उसके पश्चात् सिद्ध होता है, प्रशांत होता है, मुक्त होता है, परिनिवृत्त होता है और सब दुखों का अंत करता है।'

> "*आर्षवाणी में सुंदर ही कहा गया है कि काय-समाधारणा से जीव चारित्र के पर्यवों को निर्मल कर लेता है, उसे विशुद्ध बना लेता है और चारित्र पर्यवों को निर्मल बनाते-बनाते यथाख्यात वीतराग-चारित्र की भी प्राप्ति कर लेता है। फिर सारे कर्मों को नष्ट कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, प्रशांत और परिनिवृत्त होकर सब दुखों का अंत करने वाला भी बन जाता है।*
>
> *यही बात मन-समाधारणा की है। मन-समाधारणा का अर्थ है—मन को आगम-कथित भावों में भली-भांति लगाना। हमारा मन चंचल है। वह विभिन्न राग-द्वेष के विकल्पों में चला जाता है। जो मन इधर-उधर व्यर्थ दौड़ रहा है, उसको कहीं बांधने की अपेक्षा है। यदि ज्ञान की बातों में मन को लगा दिया जाए, आगम में कही गई बातों में मन को नियोजित कर दिया जाए—तो समय का सदुपयोग हो सकता है।*"

हमारे पास शरीर है। यह शरीर हमारे साथ अनंतकाल से माना गया है। सूक्ष्म-शरीर तो साथ रहते ही हैं। वे एक जन्म से दूसरे जन्म में जाते समय अंतराल गति में भी साथ रहते हैं। यह आत्मा एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर को धारण कर लेती है। यह शरीर धारण करने का क्रम आगे से आगे तब तक चलता रहता है, जब तक आदमी निर्वाण को प्राप्त नहीं हो जाता। काय-समाधारणा का अर्थ है—शरीर का सम्यक् प्रयोग करना। काय को स्वाध्याय

में लगाना, ध्यान में लगाना, आतापना में लगाना, सेवा में लगाना, अच्छे कार्यों में लगाना।

शरीर ज्यादा भोगी न बन जाए, प्रमाद में न चला जाए। यही बात शरीर के लिए है।

इस शरीर से बड़ा लाभ भी मिल सकता है। शरीर से साधना की जा सकती है, शरीर से तपस्या की जा सकती है। श्रीमद्‌भगवद् गीता में शरीर-तप का उल्लेख मिलता है। वहां कहा गया है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञ-पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

देव, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी जनों की पूजा करना—शरीर का तप है और काय-समाधारणा का प्रयोग है। पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा को भी शरीर-तप कहा है। ब्रह्मचर्य की साधना करना सबके लिए आसान काम नहीं होता। वे धन्य हैं, जो युवा अवस्था में भी ब्रह्मचर्य की साधना करते हैं। इस साधना में मन पर नियंत्रण करना होता है और शरीर को संयमित रखना होता है। इसी तरह दृष्टि-संयम भी आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के लिए नव-बाड़ का भी विधान है। ब्रह्मचर्य की साधना के लिए आदमी को खानपान का संयम भी रखना जरूरी है। इतना ज्यादा या ऐसा गरिष्ठ न खाया जाए कि भीतर में उन्माद पैदा होने लगे। ठीक इसी तरह ऐसे दृश्यों को देखने से भी बचना जरूरी है, जो विकृति पैदा करने वाले होते हैं। ब्रह्मचर्य की साधना में दृष्टि का असंयम दोष लगाने वाला हो सकता है। जीवों की हिंसा को टालते हुए चलना भी अहिंसा की साधना है। यह शरीर-तप भी है।

शरीर के सम्यक् प्रयोग के प्रति जागरूकता रहे तो चारित्र के पर्यवों की निर्मलता और यथाख्यात चारित्र का स्पर्श हो सकता है। अतः हम शरीर से साधना करें। स्वाध्याय, जप करें। कुछ समय हम खड़े-खड़े साधना करें, खड़े-खड़े जप करें—यह भी काय-समाधारणा का एक प्रयोग है। शरीर में शक्ति हो तो कुछ समय खड़े-खड़े साधना करनी चाहिए। मात्र आलस्य या आराम की वृत्ति के कारण खड़े-खड़े न करें, तो हम साधना के एक प्रयोग से वंचित रह जाएंगे। यह साधना हम पांच मिनट से शुरू करें। फिर दस मिनट, पंद्रह मिनट, बीस मिनट—जितने समय तक स्थिरता के साथ जप, ध्यान आदि कर सकें—उतने समय तक खड़े-खड़े साधना करना चाहिए। यह काय-समाधारणा का ही प्रयोग है। यह तो सर्व विदित है कि यह साधना बैठे-बैठे करने में कुछ विश्राम मिलता है। अतः जो अवस्था में वृद्ध हों, वे ऐसा करें। उनकी बात अलग है।

हम उपवास आदि तपस्या करते हैं। उसमें शरीर को भोजन नहीं दिया जाता—यह भी काय-समाधारणा का ही प्रयोग है। इसी तरह एक साधु, दूसरे साधु की सेवा करता है—यह भी काय-समाधारणा का प्रयोग है। शरीर को दूसरों की सेवा में लगाएं, इससे निर्जरा होगी और रुग्ण या वृद्ध साधुओं को आराम मिलेगा, साता मिलेगी। दूसरों को चित्त समाधि प्राप्त हो, दूसरों को साता पहुंचे—यह बड़ी सेवा है। आदमी अपने जीवन के बारे में सोचे कि आखिर मुझे भी अवस्था आ रही है, धीरे-धीरे जीवन-काल घटता जा रहा है। अतः मैं शरीर का सम्यक् प्रयोग करता रहूं। हमारे संघ के आचार्य कितनी सेवा करते हैं। कितने-कितने व्यक्तियों को चित्त समाधि पहुंचाने का प्रयास करते हैं। कितनों का प्रबंधन करते हैं।

आर्षवाणी में सुंदर ही कहा गया है कि काय-समाधारणा से जीव चारित्र के पर्यवों को निर्मल कर लेता है, उसे विशुद्ध बना लेता है और चारित्र पर्यवों को निर्मल बनाते-बनाते यथाश्यात वीतराग-चारित्र की भी प्राप्ति कर लेता है। फिर सारे कर्मों को नष्ट कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, प्रशांत और परिनिवृत्त होकर सब दुखों का अंत करने वाला भी बन जाता है।

यही बात मन-समाधारणा की है। मन-समाधारणा का अर्थ है—मन को आगम-कथित भावों में भली-भांति लगाना। हमारा मन चंचल है। वह विभिन्न राग-द्वेष के विकल्पों में चला जाता है। जो मन इधर-उधर व्यर्थ दौड़ रहा है, उसको कहीं बांधने की अपेक्षा है। जैसे गाय को खूंटे से बांधा जाता है, वैसे ही मन को भी 'ज्ञान के खूंटे' से बांधा जा सकता है। यदि ज्ञान की बातों में मन को लगा दिया जाए, आगम में कही गई बातों में मन को नियोजित कर दिया जाए—तो समय का सदुपयोग हो सकता है। संस्कृत साहित्य में यह कहा गया कि एक समझदार आदमी सदा अपने समय का सदुपयोग करने का प्रयास

करता है। वह ज्ञान में समय लगाता है। उसका विनोद काव्य-शास्त्र की बातों में होता है। उदाहरणार्थ—संस्कृत भाषा के कुछ विद्यार्थी एकत्रित हुए और चिंतन किया कि आज अवकाश का दिन है। इसलिए विनोद के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धक चर्चा करें। एक विद्यार्थी ने कहा—मैं एक पहेली प्रस्तुत कर रहा हूं। आप सब उसका उत्तर दें। और उसने पहेली प्रस्तुत की—

कान्तया कान्तसंयोगे, किमकारि नवोढया।
अत्रापि हि क्रियावक्तुं, मर्यादा दशवार्षिकी।।
अम्लानपंकजा माला, कण्ठे रामस्य सीतया।
मुधा बुधा भ्रमन्त्यत्र, प्रत्यक्षेपि क्रियापदे।।

दूसरा विद्यार्थी खड़ा हुआ और बोला—इसका तो सीधा-सा अर्थ है और उसने अर्थ बता दिया कि—जब स्वयंवर मंडप आयोजित हुआ, तब सीता ने खिले हुए फूलों की माला राम के गले में पहना दी। प्रश्नकर्ता विद्यार्थी ने पुनः पूछा—इसमें क्रिया कौन-सी है? यह संस्कृत भाषा का श्लोक है। इसमें कर्ता होगा तो क्रिया भी होगी। दूसरा विद्यार्थी उत्तर नहीं दे पाया। तब कई विद्यार्थियों ने दिमाग लगाया, किंतु सही क्रिया नहीं बता सके। आखिर एक अन्य विद्यार्थी ने बताया कि मैंने यह श्लोक ज्ञानियों के मुखारविंद से सुना है। इसमें क्रियापद स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता है। यहां 'प्रत्यक्षेपि' का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ प्रत्यक्ष अर्थात् सामने भी होता है। अतः इस श्लोक का अर्थ ऐसे किया जा सकता है कि क्रियापद प्रत्यक्ष होने पर भी विद्वान व्यक्ति व्यर्थ में ही इधर-उधर घूमते हैं। जबकि यहां क्रियापद अक्षेपि है, जिसका अर्थ है—डालना। यह 'क्षिपंच-प्रेरणे' धातु का रूप है। भावक्रम प्रक्रिया के अंतर्गत 'द्यादि' में यह प्रत्यक्षेपि रूप निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ होगा कि सीता ने स्वयंवर-मंडप में राम के गले में माला डाली।

उपर्युक्त उदाहरण का तात्पर्य यह है कि समझदार आदमी का समय ज्ञान-चर्चा व अच्छे कार्यों में बीतता है, जबकि अज्ञानी आदमी का समय गलत कार्य करने या जुआ खेलने, शराब पीने, लड़ाई-झगड़ा करने, अधिक सोने आदि में बीतता है। जो व्यक्ति ज्ञान-प्राप्ति में अपने मन को नियोजित कर लेता है, किसी अच्छी पुस्तक को पढ़ने में तल्लीन बन जाता है—वह एकाग्र बन सकता है। किसी ज्ञानपूर्ण बात में मन को लगाने से, चिंतन-मनन करने से ही ज्ञान का विकास होता है। इसी तरह ज्ञानियों का भाषण सुनने से, ज्ञान की बात सुनने से भी ज्ञान बढ़ता है, ज्ञान पुष्ट होता है।

इसी संदर्भ में एक प्रश्न दृष्टव्य है—**'मणसमाहारणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?**—भंते! मन-समाधारणा से जीव क्या प्राप्त करता है?' —उत्तर दिया गया—**'मणसमाहारणयाए णं एगग्गं जणयइ, जणइत्ता नाणपज्जवे जणयइ, जणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइ मिच्छत्तं च निज्जरेइ**—मन-समाधारणा से एकाग्रता निष्पन्न होती है। एकाग्रता को निष्पन्न कर जीव ज्ञान-पर्यवों को पैदा कर लेता है। ज्ञान-पर्यवों को पैदा कर वह सम्यक्त्व का विशोधन करता है और मिथ्यात्व का निर्जरण करता है।'

सही ज्ञान मिलने पर ही सम्यक्त्व विशुद्ध बनता है और आस्था मजबूत बनती है। आस्था को टिकाए रखने के लिए ज्ञान आवश्यक है। ज्ञान-विहीन आस्था इधर-उधर घूमती रहती है, एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकती। आस्था मजबूत होने से मिथ्यात्व का निर्जरण अपने आप हो जाता है। मिथ्यात्व का समाप्त होना और सम्यक्त्व का विशोधन होना, दोनों कार्य जुड़े हुए हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि 'काय-समाधारणा' से जहां चरित्र की विशुद्धि होती है, वहीं 'मन-समाधारणा' से मिथ्यात्व समाप्त होता है और सम्यक्त्व का विशोधन होता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विशोधन का यही उपाय है। अतः 'काय-समाधारणा' और मन-समाधारणा का साधना की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। ❖

संसार के जितने भी भय हैं, वे हमारे खयाली पैदावार हैं। पैसे से, कुटुंब से, शरीर से 'मेरापन' की भावना दूर कर दें, तो फिर भय किसका और काहे का!

—महात्मा गांधी

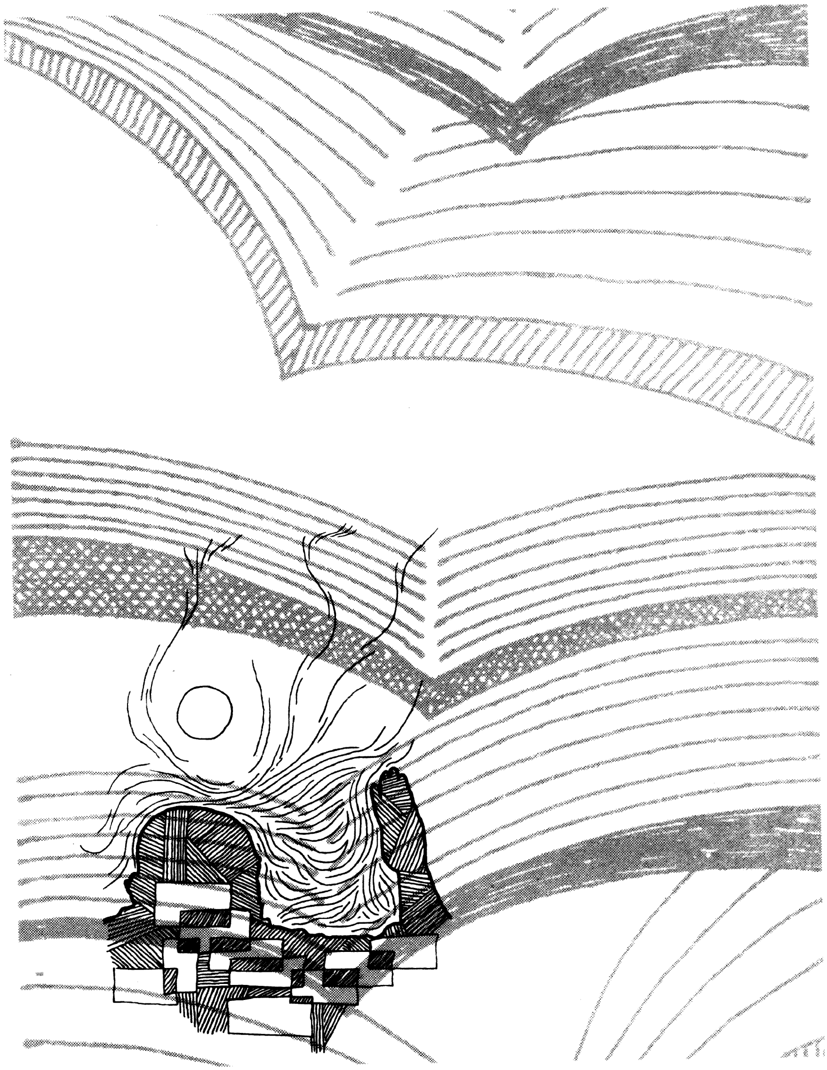

अनुभूति

दुनिया का सबकुछ क्षणभंगुर है, सिर्फ एक ही चीज है, जो टूटती नहीं या नष्ट नहीं होती— वह है, भाव या आदर्श। हम लोगों का आदर्श, समाज की आशा-आकांक्षा, हम लोगों की विचारधारा अविनश्वर है। भावना को क्या कोई दीवारों में घेर सका है?

संपूर्ण दे देने के लिए आदर्श को संपूर्णतः अपनाना ही होगा। अथवा, आदर्श को संपूर्णतः पाने के लिए अपना संपूर्ण देना ही पड़ेगा। त्याग और उपलब्धि—रिनंसिएशन एंड रियलाइजेशन—एक ही वस्तु के दो पहलू हैं।

—सुभाषचंद्र बोस

❁ अभिनिष्क्रमण दिवस ❁
चैत्र शुक्ला नवमी : रामनवमी
❑ 12 अप्रैल ❑

आचार्यश्री भिक्षु : एक विजितात्मा; एक अध्यात्म योगी

❁ समणी डॉ. अमितप्रज्ञा ❁

योगयुक्तो विशुद्धात्मा
विजितात्मा जितेंद्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा
कुर्वन्नपि न लिप्यते।
—गीता 5/7

जो योगयुक्त है, विशुद्ध है, विजितात्मा और जितेंद्रिय है और जो सभी प्राणियों को अपने समान समझता है—वह क्रिया- करता हुआ भी लिप्त नहीं होता। आचार्यश्री भिक्षु ऐसे ही एक योगयुक्त साधक थे। वे बंधनमुक्ति की तलाश में निकले, पर कभी क्रिया में लिप्त नहीं बने। वे सत्य के उपासक थे। विरोधों के सामने कभी झुकना नहीं सीखा, क्योंकि वे लौहपुरुष थे। उन्होंने अध्यात्म और व्यवहार को सदा अलग-अलग माना।

मुनि, अणगार, संयति, श्रमण, यति, भिक्षु, तपस्वी, साधक आदि शब्दों को सार्थक करने वाला ही योगमुक्त साधक बन सकता है। आचार्यश्री भिक्षु मुनि थे—**'यो मन्यते स मुनिः'**—जो जानता है, वह मुनि है। मुनि का भाव मौन है। मौन से तात्पर्य है—ज्ञान अथवा संयम। आचार्यश्री भिक्षु ज्ञानी भी थे और संयमी भी थे। उनके साहित्य की ओर दृष्टिपात करें, तो उनकी साहित्य-रचना का प्रमुख विषय शुद्ध-आचार का प्रतिपादन एवं तत्त्वदर्शन का विश्लेषण रहा है। उनकी साधना का मूल सूत्र ही अप्रमाद था। वीतराग की साधना में लीन आचार्यश्री भिक्षु निरंतर जागरूक थे। वे आत्मदर्शन में सदा तल्लीन रहे—**संपिक्खए अप्पगमप्पएणं**—आगम के इस सूक्त को उन्होंने चरितार्थ किया। उनकी पैनी दृष्टि एवं सूक्ष्मग्राही मेधा ने आगमों का गहन अध्ययन किया, उसका नवनीत निकाला। उनकी ज्ञानाराधना का प्रत्येक क्षण नूतन चिंतन के रूप में सदैव सामने आया। साधुवर्ग के आचार-विचार संबंधी शिथिलता को देख वीर भिक्षु ने महावीर की वाणी को गहरे ओज के

> “*आचार्यश्री भिक्षु मुनि थे—'यो मन्यते स मुनिः'—जो जानता है, वह मुनि है। मुनि का भाव मौन है। मौन से तात्पर्य है—ज्ञान अथवा संयम। आचार्यश्री भिक्षु ज्ञानी भी थे और संयमी भी थे। उनके साहित्य की ओर दृष्टिपात करें, तो उनकी साहित्य-रचना का प्रमुख विषय शुद्ध-आचार का प्रतिपादन एवं तत्त्वदर्शन का विश्लेषण रहा है। उनकी साधना का मूल सूत्र ही अप्रमाद था। वीतराग की साधना में लीन आचार्यश्री भिक्षु निरंतर जागरूक थे। वे आत्मदर्शन में सदा तल्लीन रहे—संपिक्खए अप्पगमप्पएणं—आगम के इस सूक्त को उन्होंने चरितार्थ किया। उनकी पैनी दृष्टि एवं सूक्ष्मग्राही मेधा ने आगमों का गहन अध्ययन किया, उसका नवनीत निकाला। उनकी ज्ञानाराधना का प्रत्येक क्षण नूतन चिंतन के रूप में सदैव सामने आया।*”

साथ अपने गुरु के सम्मुख रखा—**'आतमा रा कारज सारस्यां'**—आचार्यश्री भिक्षु के ये शब्द उनके मुनित्व के प्रखर भाव को उजागर करते हैं, आत्म बलिदान की भावना को पुष्ट करते हैं।

सही पथ को वही देख सकता है, जिसके भीतर ममत्व, मूर्च्छा का भाव नहीं है—**'से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स णत्थि ममाइयं'**—ममत्व के कारण व्यक्ति सही पथ से भी च्युत हो सकता है और उसका सम्यक् ज्ञान भी मिथ्याज्ञान में परिणत हो सकता है। जिसके ममत्व की गांठ खुल गई, जो ममत्व से मुक्त हो गया—वास्तव में वही मुनि है।

ऐसे पराक्रमी सुशिष्य पर गुरु का अगाध प्रेम था। अपने गुरु पर शिष्य को भी नाज था। पर, अपने क्रांतिपूर्ण विचारों को जब गुरु के सामने रखा और जब तदनुरूप कोई संतोषजनक परिणाम नहीं मिला, तब गुरु से भी संबंध विच्छेद करने में वह क्रांतदर्शी शिष्य नहीं चूका और क्रांति का सिंहनाद कर प्रखर-मुनित्व का परिचय दिया। निर्मोही मुनि भिक्षु की क्रांति के सामने संप्रदाय का मोह, गुरु का मोह बाधक न बन सका।

मुक्ति के बाद उस क्रांतदर्शी ने पहला प्रवास श्मशान की छतरियों में किया।

आचार्यश्री भिक्षु वीर पुरुष थे। समता की उपासना करने वाला ही वीर होता है। धर्मक्रांति के साथ ही मुनि भिक्षु पर विरोधों के पहाड़ टूट पड़े। जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं रोटी, कपड़ा, मकान के लिए भी उन्हें संघर्ष झेलने पड़े। अन्न-पानी नहीं मिलने पर कभी कोई खिन्नता प्रकट नहीं की। कम मिलने पर भी वही प्रसन्नता और न मिलने पर भी सहज समता को जीवन का सूत्र बना लिया। किसी के द्वारा दान देने से प्रतिषेध किए जाने पर भी वे समतासिंधु में अवगाहन करते रहे। मन को विचलित करने में कारणभूत बनती इन परिस्थितियों में भी समता-रस का पान करते रहे।

जो वीर होता है, वही इस प्रकार के समत्व का आचरण कर सकता है। अपने सहगामी मुनि हेमराजजी को कष्टमय जीवन के संस्मरण सुनाते हुए मुनि भिक्षु कहते हैं—**'म्हे उणा नै छोड़्या जद पांच वर्ष तांई तो पूरो आहार न मिल्यो····। आहार-पानी जांच नै उजाड़ में सर्व साध परहा जावता। रुखड़ां री छांया में आहार-पाणी मैलने आतापना लेता। आथंण रा पाछा गांव में आवता। इन रीते कष्ट भोगवता, कर्म काटता।'**

—*भिक्षु दृष्टांत, पृ. 276*

वर्षों तक लगातार ऐसी विपत्तियों का सामना करते हुए भी वीर भिक्षु के मन में तप, संयम और साधुत्व के नियमों के प्रति अरति के भाव कभी पैदा नहीं हुए और असंयम में रति नहीं हुई। वही साधक वीर होता है, जो अरति-रति दोनों में मध्यस्थ रहता है, आसक्त नहीं होता।

उपाध्याय यशोविजयजी ने 'अध्यात्मसार' ग्रंथ में इसका मार्मिक विवेचन किया है और बताया है कि **'वासी चंदनतुल्यता'** की स्थिति कब घटित होती है—

समता परिपाके स्यात् विषयग्रहशून्यता।
यया विशदयोगानां वासीचंदनतुल्यता।।

मुनि भिक्षु के सामने कई ऐसे प्रसंग आए, जहां व्यक्ति अपना आपा खो डालता है। पर, वे विचलित नहीं हुए। पात्र में आया हुआ आहार भी छीन लिया—**'घी सहित घाट लइने ठाली कर दियो ठाम।'**—वही वीर प्रशंसित होता है जो अदान से खिन्न नहीं होता—**'एस वीरे पसंसिए, जे ण णिविज्जति अदाणाए'**—ऐसे प्रशंसनीय वीर थे—आचार्यश्री भिक्षु।

जिसका अपना कोई घर नहीं होता, वही अनगार कहलाता है। मुनि भिक्षु अनगार थे। हाथी का भार गधों पर लादा जा रहा था और गधे भी थक कर नीचे बैठने की तैयारी में थे, ऐसे शिथिलाचार के समय मुनि भिक्षु ने ऊंचे स्वर में उद्घोषणा की कि साधु के निमित्त बनाए हुए स्थानक में साधु को रहना नहीं कल्पता।

साधां रै काजे थानक करावै,
छ काय रो कर घमसाण।
तिण थानक मांहें रहिवा लागा,
त्यां भांगी छै श्री जिन आण।।
बांध्या थानक पकर्‌या ठिकाणा रे,
गृहस्थ सूं मोह बंधाणा।
सुखसीलिया साताकारी रे,
डूबा साधु नो भेष धारी।

—*आचार री चौपाई*

जो अनगार होता है, वह आत्मा को केंद्र में रखता है और सब पदार्थ उसकी परिधि में रहते हैं। वह पश्यक द्रष्टा होता है। वह आत्मा और परमतत्त्व को ही देखता है। इसलिए वह परिग्रह बुद्धि से, ममत्व बुद्धि से किसी भी पदार्थ का भोग नहीं करता। पदार्थ के उपभोग में आचार्यश्री भिक्षु का उद्देश्य, भावना और विधि सदा ही अनगार वृत्ति से जुड़ी रही। देहासक्ति से ऊपर उठकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र की समन्वित आराधना में ही वे संलग्न रहे। गुरु की यह भविष्यवाणी—**'अवश्य ही वह भावितात्मा अनगार होगा'**—सत्य निकली।

मुनि भिक्षु श्रमण थे। श्रमण का प्राकृत भाषा में 'समण' रूप बनता है। संस्कृत में 'समण' शब्द के शमन, श्रमण, समनस्, समण—पर्यायांतर शब्द हो सकते हैं। इनके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी भिन्न-भिन्न हैं। शमन—**शमु उपशमे शाम्यति क्रोधादिकषायानिति शमनः**—जो क्रोधादि कषायों का उपशम करता है, वह शमन है।

श्रमण भिक्षु के अभिनिष्क्रमण के साथ ही गुरु ने कड़ी चेतावनी दी—'अच्छा, तो अब तू भी देखना। आगे तू है और पीछे मैं। तेरे पीछे इतने लोगों को लगा दूंगा कि याद करता रहेगा'—**पग-पग पर लोग लगास्यूं थारै लार हो**—अभिशाप मयी इस गुरुवाणी को आशीर्वाद के रूप में वही ले सकता है जिसके कषाय शांत हैं। मुनि भिक्षु का प्रत्याख्यानावरण कषाय प्रशांत था। इसीलिए वे महाव्रतों के शुद्ध पालन की दिशा में अनवरत आगे बढ़ते चले गए।

अनिच्छन् कर्मवैषम्यं ब्रह्मांशेन शमं जगत्।
आत्माभेदेन यः पश्येदसौ मोक्षंगमी शमी।।

कर्मों की विषमता को न चाहने वाला, संपूर्ण चैतन्य जगत को आत्मवत समझने वाला, क्रोधादि कषायों का क्षय करने वाला शमी मोक्षगामी होता है।

श्रमण श्रमुतपसि खेदे च, श्राम्यतीति श्रमणः।

इंद्रियों और मन को श्रम (अध्यात्म साधना) में लगाए रखने वाला श्रमण है। स्थानांग की वृत्ति में भी 'समन' का अर्थ पवित्र मन वाला किया गया है—**'सह मनसा शोभनेन निदान परिणाम लक्षण पापरहितेन च चेतसा वर्त्तत इति समनसः'**। *(स्थानांग टीका, पृ. 268)*—निर्युक्ति में 'समनस्' का अर्थ राग-द्वेष रहित मन वाला, मध्यस्थवृत्ति वाला किया गया है।

श्रमण भिक्षु ने भी अपनी इंद्रियों और मन को निरंतर अध्यात्म साधना में संलग्न रखा। 38000 पद्य परिमाण रचना और आगमों का गहन अध्ययन इस बात का साक्षी है।

एक यूनानी कहावत है—मुझे प्लेटो प्रिय है, सुकरात प्रिय है—पर, सत्य सबसे अधिक प्रिय है। आचार्यश्री भिक्षु ने भी इसी सचाई को स्वीकार करते हुए कहा—'मुझे गुरु प्रिय है, परंपराएं और परिवेश प्रिय हैं, पर सबसे अधिक प्रिय सत्य है। सत्य के लिए ही वे मान्यताओं को त्यागने को तत्पर हुए। क्रांतिकारी विचारक खलील जिब्रान ने कहा था—'यदि तुम एक बार नग्न सत्य का प्रयोग करोगे तो तुम्हारे सभी साथी तुम्हें छोड़ देंगे, दूसरी बार करोगे तो तुम्हें देश से निष्कासित कर दिया जाएगा और यदि तीसरी बार उसके लिए तुम्हारी जीभ खुली तो फांसी का फंदा तुम्हारे गले में झूल जाएगा। दुनिया से तुम्हारा अस्तित्व समाप्त कर दिया जाएगा, क्योंकि दुनिया के कान कच्चे होते हैं। सफलता प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को सत्य की आंच में पकना होता है।'—आचार्यश्री भिक्षु ने अध्यात्म के क्षेत्र में जिन सचाइयों को प्रकट किया, उन्हें एक, दो या तीन बार नहीं—अनेक बार दुहराया, डंके की चोट दुहराया। परिणाम वही आया कि कई साथी छोड़कर चले गए, कई बार निवास स्थान से निकाल दिए गए। फांसी की स्थिति न भी आई हो, पर उन्हें समाप्त कर देने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए। फिर भी वे सत्य पर अडिग रहे।

समण वही है, जो सब जीवों को आत्मतुला की दृष्टि से देखे। समता सेवी ही 'समण' कहलाता है। अहिंसा का ऐसा ही गूढ़ एवं सूक्ष्म चिंतन आचार्यश्री भिक्षु ने दिया—**'अत्तसमे मन्नेज्ज छप्पिकाए'**—महावीर की यह वाणी उनके सामने सदैव रही। इसीलिए उन्होंने एकेंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय तक सभी जीवों के प्रति अहिंसक वृत्ति को प्रोत्साहन दिया। आवश्यक हिंसा को हिंसा न मानने वाले एवं बड़े जीवों के सुख के लिए छोटे जीवों की हिंसा में धर्म मानने वालों को उन्होंने डंके की चोट कहा—

और वसत मे भेल हुवै पिण, दया में नहीं हिंसा रो भेलो।
ज्यूं पूरव ने पछिम रो मारग, किण विध खाये भेलो।।

(अनुकंपा की चौपई)

शेष पृष्ठ 39 पर

❁ **महाप्रयाण दिवस : पुण्य स्मरण** ❁

वैशाख कृष्णा एकादशी

❑ 28 अप्रैल ❑

आचार्यश्री महाप्रज्ञ : अंतर्जागृति के अभिनव प्रेरणास्रोत

❁ साध्वी राजकुमारी (द्वितीय) ❁

शब्दों की अपनी सीमा है, पर गुण तो असीम हैं। अतः असीम गुणों का वर्णन सीमित शब्दों से नहीं किया जा सकता और गुरु की महिमा में जितना लिखा जाए, वह कम है। गुरु वस्तुतः ज्ञान के महान भंडार होते हैं। सद्गुरु की शब्द-ज्योति शिष्य के अंतर्मन में नूतन परिभाषाएं जागृत करती है। जब हम अंतःकरण की गहराई में उतर कर चिंतन करते हैं, तब हमें ऐसा प्रतीत होता है कि फूल से भी अधिक सुंदर, संगीत से भी अधिक मधुर, आकाश से भी अधिक ऊंचाइयां, सागर से भी अधिक गहराई, पवन से भी अधिक पावन एवं आकर्षण से भी अतिशय आकर्षक गुरु होता है। गुरु के दिव्य आभामंडल की तेजस्विता सहज ही आकर्षित कर लेने वाली होती है। गुरु हर शिष्य को जीने की नूतन कला सिखाते हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ऐसी ही विशेषताओं से युक्त महान गुरु थे। उनका ज्ञान-भंडार अगाध था। आप निसर्गतः करुणाशील विचारों के महान-धनी पुरुष थे। चिंतन की प्रौढ़ता एवं विचारों की मौलिकता से परिपूर्ण आपकी सृजन-धर्मिता ने आपको शीर्षस्थ रचनाकार-सर्जक का गौरव प्रदान किया। आप विद्या-वारिधि के अपूर्व संगम थे। आपके आभामंडल की पवित्रता और अतींद्रिय शक्ति एक जागृत योगी होने का स्वयंभू प्रमाण है। आपका मौलिक मंतव्य एवं उदात्त चिंतन इतिहास की अमूल्य धरोहर है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के वचन व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन की दिशा को आमूल-चूल परिवर्तित कर देते थे। वे प्रतिपल जागृति का अभिनव संदेश प्रदान करने वाले द्रष्टा थे। आपकी सुधामयी अजस्र वाग्धारा जनमानस की प्रसुप्त चेतना को जगाने में प्रबल प्रेरणा प्रदान करती थी, जिनमें अनेक लोगों

> *“प्रेक्षाध्यान जीवन जीने की एक अद्भुत कला सिखाता है। यह साधना पद्धति मानव मात्र के लिए एक वरदान सिद्ध हुई है। भारत में इसके अनेक केंद्र खुले हुए हैं, जहां प्रेक्षाध्यान के शिविरों का प्रायः समायोजन होता रहता है। अनेक लोग इस ध्यान साधना पद्धति से लाभान्वित हो रहे हैं। श्रमण भगवान महावीर की ध्यान साधना-पद्धति का पुनरुद्धार कर आपने एक बहुत बड़ा कार्य किया है। यह आपका महान और अविस्मरणीय अवदान है और जन-जन इसके लिए हृदय से आभारी है। जैन और जैनेतर सभी, इस महान अवदान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। विदेशों में भी इस ध्यान-पद्धति की गहरी गूंज है। कई देशों में 'प्रेक्षा योग सेंटर' एवं 'प्रेक्षा मेडिटेशन सेंटर' संचालित हो रहे हैं। इसका समग्र श्रेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को ही है। इसीलिए जैनाचार्यों की यशस्वी परंपरा के आप एक महान यशस्वी आचार्य माने गए हैं। आपसे अध्यात्म-जगत की आभा भरपूर निखरी है।”*

की शंकाओं का स्वतः समाधान मिलता था। आपके वक्तव्यों में साधना का पावनतम संदेश, स्व-परिवर्तन का चिर-विश्वास और प्रतिभा-प्रेरणा का अनुपम पाथेय लोगों में दिव्य आत्मतोष का एहसास कराता था।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी अध्यात्म विद्या के अपूर्व संगम थे। आपके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को शब्दाभिव्यक्ति में बांधना बहुत कठिन है। एक महान योगी एवं अंतस की गहराई में उतरने वाले सर्वोच्च ध्यान-साधक थे। वीतरागता की आपमें सहज अनुभूति होती थी। आप संयम एवं साधना के शलाका-पुरुष थे। तेरापंथ धर्मसंघ के बाह्य और अंतरंग विकास में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का अपूर्व योगदान रहा है। यह योगदान वस्तुतः शब्दातीत है। आपका जीवन सचमुच ही विलक्षण विशेषताओं का एक अद्वितीय समवाय था। एक ओर आप भारतीय वाङ्मय के एक महान अध्येता रहे, तो साथ ही आगम शास्त्रों के प्रति आपकी गहरी निष्ठा रही है। आपने आधुनिक एवं वैज्ञानिक संदर्भ में आगमों की व्याख्या प्रस्तुत कर एक नया कीर्तिमान प्रस्थापित किया। अपरिमेय विद्वत्ता के साथ सहज विनम्रता का योग आपके जीवन का एक मणिकांचन योग है।

अपने शिक्षा-गुरु आचार्यश्री तुलसी के प्रति उनका समर्पण-भाव, विनयनिष्ठा एवं भक्तिनिष्ठा को देख कर जनमानस आश्चर्य-विभोर होता था। वस्तुतः दोनों के मध्य परस्पर का अलौकिक अद्वैत-भाव था। ऐसे विद्वान और विनम्र शिष्य का प्राप्त होना सौभाग्य की बात होती है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने एक बार कहा था कि स्वामी विवेकानंद जैसे शिष्य को प्राप्त कर मैं अपने आप में एक गौरव का अनुभव करता हूं। इसी प्रकार आचार्यश्री तुलसी ने भी अपने शिष्य की गरिमा का दिग्दर्शन कराते हुए बहुत विलक्षण बातें कही थीं। इस आधुनिक युग में महाप्रज्ञजी जैसे योग्य शिष्य को प्राप्त कर वे सात्त्विक गौरव का अनुभव करते थे। प्रत्युत्तर में आचार्यश्री महाप्रज्ञ कहा करते थे कि ऐसे सद्गुरु का मिलना अपने आप में ही दुर्लभ संयोग है।

आचार्यश्री तुलसी की प्रत्येक कल्पना को आपने साकार किया है। आचार्यश्री तुलसी ने भी आपको एक विशिष्ट आशीर्वाद दिया था—'महाप्रज्ञ! तुम धर्मसंघ में सदा नए-नए आयामों, उन्मेषों एवं अभिक्रमों का उद्घाटन करो, धर्मसंघ में दीर्घजीविता प्रदान कर संघ को लाभान्वित करो।'

विक्रम संवत 2019 का चातुर्मास उदयपुर में था। उस समय आगम संपादन का कार्य बड़ी द्रुतगति से चल रहा था। उत्तराध्ययन-सूत्र के तीसवें अध्ययन में ध्यान का प्रसंग आया। तब आचार्यश्री तुलसी ने कहा कि—'वर्तमान में ध्यान की परंपरा बिल्कुल ही विलुप्त हो गई है, तुम अब इस पर अनुसंधान करो।'—यह संकेत प्राप्त होते ही आचार्यश्री महाप्रज्ञजी इस कार्य में तत्परता से संलग्न हो गए और विक्रम संवत 1975 में अपने जयपुर चातुर्मास में ध्यान-साधना का समुद्घाटन कर दिया। इस ध्यान-साधना पद्धति का नाम रखा गया—प्रेक्षाध्यान-साधना।

प्रेक्षाध्यान जीवन जीने की एक अद्भुत कला सिखाता है। अनेक लोग इस ध्यान साधना पद्धति से लाभान्वित हो रहे हैं। यह साधना पद्धति मानव मात्र के लिए एक वरदान सिद्ध हुई है। भारत में इसके अनेक केंद्र खुले हुए हैं, जहां प्रेक्षाध्यान के शिविरों का प्रायः समायोजन होता रहता है। श्रमण भगवान महावीर की ध्यान साधना-पद्धति का पुनरुद्धार कर आपने एक बहुत बड़ा कार्य किया है। यह आपका महान और अविस्मरणीय अवदान है और जन-जन इसके लिए हृदय से आभारी है। जैन और जैनेतर सभी, इस महान अवदान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। विदेशों में भी इस ध्यान-पद्धति की गहरी गूंज है। कई देशों में 'प्रेक्षा योग सेंटर' एवं 'प्रेक्षा मेडिटेशन सेंटर' संचालित हो रहे हैं। इसका समग्र श्रेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को ही है। इसीलिए जैनाचार्यों की यशस्वी परंपरा के आप एक महान यशस्वी आचार्य माने गए हैं। आपसे अध्यात्म-जगत की आभा भरपूर निखरी है। किसी कवि ने कितना मार्मिक कहा है—

गते शोको न कर्तव्यो-भविष्यं नैव चिन्तयेत्
वर्तमानेन कालेन, प्रवर्तत्ते विचक्षणाः

बुद्धिमान व्यक्ति बीते हुए समय का कभी शोक नहीं करते तथा न कभी भविष्य की चिंता करते हैं, वे तो सदा अपने वर्तमान को ही सार्थक बनाने का प्रयास करते हैं।

व्यक्ति के जीवन में महत्त्वपूर्ण जागृति तब आती

है, जब व्यक्ति अंतःकरण की गहराई में उतर कर अपनी ऊर्जा को जागृत करता है। तब आत्मोपलब्धि की दिशा उद्घाटित होती है। वस्तुतः शक्ति भीतर में ही निहित है। जब भीतर की ऊर्जा जागृत होती है, तभी ध्यान की क्रियाएं संभव हो पाती हैं। ध्यान की यह पद्धति (प्रेक्षाध्यान) अतिशय परिष्कृत तथा विज्ञान सम्मत है। अध्यात्म-साधना के पथ पर अग्रसर होने के लिए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपने प्रकाशपुंज से सबको प्रबल प्रेरणा प्रदान की है। आपकी सद्प्रेरणा सबको प्रोत्साहित करती रही है। तभी आज हजारों व्यक्ति इस साधना से लाभान्वित हो रहे हैं।

यह तो सर्वमान्य है कि आत्म-साक्षात्कार के लिए गहरे में जाना पड़ता है। प्रकृति का भी यही नियम है कि गहरे अंधकार के बीच से ही सूर्य का उदय होता है। आत्मा के प्रकाश को पाने के लिए भी खुद को ही तलाश करनी पड़ती है। परमात्मा को पाने का सामर्थ्य हर-एक के भीतर में विद्यमान है। वह कभी बाहर से प्राप्त नहीं होता। दरअसल हमारी चेतना पर एक सघन आवरण छाया हुआ है। जब वह दूर हो जाता है, तब एक दिव्य-किरण भीतर से स्वतः प्रस्फुटित होती है। सब जानते हैं कि हर सुबह नई ज्योति, नई ऊर्जा, नया प्रकाश और नया विश्वास लेकर आती है, पर हमें उसका एहसास होना चाहिए। जैसे-जैसे साधना के क्षेत्र में हम आगे बढ़ते चले जाते हैं, वैसे-वैसे यह एहसास शुरू होने लगता है और वैसे-वैसे ही अमितानंद प्राप्त होता चला जाता है। यह आनंद स्वगम्य है, शब्द-गम्य नहीं है।

दरअसल आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को भी गहराई से समझने की जरूरत है। आप अगाध ज्ञान के भंडार हैं, अध्यात्म के महासूर्य हैं और उदार विचारों के धनी रहे हैं। अपनी सुधा-स्रोतस्विनी वाणी से वाङ्मय का वैभव मुक्त हाथों से लुटाते रहे हैं। जन-जन के घट में प्रज्ञा का दीप जला कर अंतर्पट को समुद्घाटित करने का दिव्य-संदेश प्रदान करते रहे हैं। इस महापुरुष के चरण जहां भी टिके, वहीं प्रकाश की रश्मियां लहलहा उठीं। जिस पर आपकी करुणा की वर्षा हो जाती, वह अपने-आपमें धन्यार्थता की अनुभूति से अतिशय आप्लावित हो जाता है।

प्रसंगवश एक घटना का उल्लेख यहां समीचीन होगा। विक्रम संवत 2024 की बात है। आचार्यश्री तुलसी ने मुझे मौन-ध्यान करने की प्रेरणा प्रदान की और तब मैंने 22 वर्ष पर्यंत पूर्ण मौन रह कर ध्यान की दीर्घ साधना की। इस साधना काल के दौरान मुझे अनेक विघ्नों एवं संकटों का सामना करना पड़ा, लेकिन मैंने अपना धैर्य बराबर बनाए रखा। मुझे सदैव यह एहसास होता रहा कि गुरुदेवश्री मेरे पास प्रहरी की भांति समुपस्थित रहते हैं। मुझे ऐसा एहसास भीतर से सतत होता रहता था। मैं गुरुदेवश्री के चरणों में सर्वात्मना समर्पित थी। मैंने गुरुदेव से पूछा कि—'ध्यान कैसे करना है?' आपने कहा—'नासाग्रदृष्टि' रख कर तुमको ध्यान करना है।'—गुरुदेवश्री द्वारा प्रदत्त विधि का आलंबन लेकर मैंने ध्यान प्रारंभ किया। मैं जब-जब आचार्यश्री तुलसी की सन्निधि में उपस्थित होती, तब-तब आप मुझे कहा करते कि—'तुमने युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी का समय लिया या नहीं, क्योंकि तुम्हारे प्रश्नों का समाधान वे ही कर सकते हैं। वे साधना के शिखर पर पहुंचे हुए योगी हैं।'—गुरुदेवश्री तुलसी के निर्देशानुसार मैं आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का मार्गदर्शन निरंतर लेती रहती। इस तरह समय-समय पर जो मार्गदर्शन आचार्यश्री महाप्रज्ञजी से मुझे प्राप्त हुआ, उसने मुझे आश्वस्त बना दिया।

साधना में जो सफलता मुझे प्राप्त हुई, उसका समग्र श्रेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को है। इसीलिए मैं उनकी अतिशय आभारी हूं। आपकी महानता एवं गरिमा का वर्णन शब्दों से नहीं किया जा सकता। साधक जब तक अहंकार के विलय से मुक्त नहीं होता, तब तक आत्मोपलब्धि का होना कठिन है। ध्यान की साधना में अग्रसर होने के लिए तो गुरु का मार्गदर्शन सर्वोपरि है। साथ ही गुरु के महात्म्य को समझना भी अत्यंत अपेक्षित है। तभी तो कवि ने कितना सटीक कहा है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वर
गुरुः साक्षात् परब्रह्मः, तस्मै श्री गुरुवे नमः।

अतः गुरु को नमन। सहस्र बार नमन। ❖

संदर्भ

महावीर जयंती

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी : 18 अप्रैल

दो किस्तों में समाप्य

लंबी कहानी

वैशाली के संथागार में

वीरेंद्रकुमार जैन

महाराज सिद्धार्थ अपने निज कक्ष में, एकाएक मुझे सामने खड़ा पाकर भौचक्के रह गए। बचपन के बाद पहली बार यहां हूं और इस वैभव के कक्ष में, जैसे एकदम ही विदेशी की तरह खोया खड़ा हूं। आश्चर्य से राजा निस्तब्ध हैं, और मानो मुझे नए सिरे से पहचानना चाह रहे हैं।

—'बापू! कल वैशाली जाना होगा। आदेश पा गया हूं!'

—'यह तो चमत्कार हुआ बेटा! आज बड़ी भोर ही वैशाली से अश्वारोही तुम्हारे लिए निमंत्रण लेकर आया है। मैं स्वयं तुम्हारे पास आने ही को था, कि तुम खुद भी आकर मुझसे वही कह रहे हो। आश्चर्य!'

—'मुहूर्त इसी को तो कहते हैं, महाराज!'

—'चेटकराज ने लिखा है, बेटा, कि चंपा को भीतर-बाहर चारों ओर से मागधों ने घेर लिया है। पूर्वीय समुद्र-पत्तन पर से सुवर्ण-द्वीपों को जाने वाले जहाजों को मागध अपने पोतों में खाली कर, सारी संपदा मगध पहुंचा देते हैं। चंपा का वाणिज्य समाप्त हो गया।'

—'तो चंपा की मुक्ति का मार्ग आसान हो गया, बापू!'

—'वर्द्धमान, यह क्या कह रहे हो तुम?'

—'यही कि चंपा अपने शत्रु को अब ठीक-ठीक पहचान सकेगी।'

—'शत्रु को पहचानना तो अब असंभव हो गया है, चंपा में। जन-जन के घर-घर में शत्रु मित्र बन कर घुसे बैठे हैं। ऐसा लगता है कि चंपा के जन ही देश-द्रोही हो उठे हैं।'

> *"....फिर बागमती नदी के तटांत से गुजरते हुए हम ठीक वैशाली के राजमार्ग पर थे। शारदीय फूलों से लदी, यक-सा तरुमालाओं में से गुजरते हुए देखा—आईने-सी स्वच्छ सड़क पर दोनों ओर की वनराजि मानो पन्ने की शिलाओं से तराश दी गई हैं। दोनों ओर के उपांतों में झांक रही थीं ठौर-ठौर कमलों भरी वन-सरसियां। कास फूलों के तटों वाली विजनवती नदियां। हंसों, चक्रवाकों, हरिणों के युगल-विहार। एक अद्भुत निर्मलता, लयात्मकता और पूर्णत्व का बोध हुआ। वैशालिकों की सौंदर्य-चेतना पर मुग्ध हुए बिना न रह सका। अलौकिक लगा यह प्रदेश—कोई स्वर्ग-पटल ही पृथ्वी पर अनायास जैसे उतर आया है।"*

—'देश-द्रोही नहीं, राज-द्रोही कहिए, बापू! और, जन के लिए वह होना तो स्वाभाविक था। पर मातृभूमि का द्रोह कभी जन नहीं करते तात! वह तो महाजन और राजन ही करते हैं। क्योंकि उनके मन संपदा और सत्ता से अधिक मूल्यवान और पवित्र कुछ नहीं। मां और वल्लभा का सतीत्व भी उनके लिए गौण हो सकता है। फिर बेचारी मातृभूमि की क्या कीमत! वह उनके मन जड़ धरती से अधिक माने नहीं रखती, जिसे अपनी तलवार और सुवर्ण से वे खरीद और बेच सकते हैं। ताकि रत्न-गर्भा वसुंधरा को वे मनचाहा सूंत लें।'

—'बेटा, मैं तो तुम्हें निपट सौम्य जानता था। कल्पना न थी कि इतने उग्र भी तुम हो सकते हो। कभी तुम्हारी आवाज तक इस राजमहल में नहीं सुनाई पड़ी। और, अब देखता हूं कि ज्वालामुखी बोल रहा है...!'

—'मैं नहीं बापू! महाशक्ति बोल रही है और मैं भी उसे सुन रहा हूं। उसका साक्षात्कार करके मैं स्वयं स्तंभित हूं।'

—'इष्ट ही है बेटा! इस समय वैशाली को तुम्हारी आग की जरूरत है। रूप उसका जो भी हो। महाधनुर्धर महाली धनुर्वेद के एक विकट प्रयोग में, अचानक आंखें खो बैठे हैं। तो मानो सारी वैशाली अंधी हो गई। हमारे दुर्भाग्य की पराकाष्ठा हो गई। तुम्हारे मामा महानायक सिंहभद्र तक इस दुर्घटना से एकदम हताहत हो गए हैं। कहते हैं, मेरी दक्षिण भुजा टूट गई, मेरा धनुष भूलुंठित है।'

—'मगर सुनता हूं, तात, सिंह मामा तक्षशिला के आचार्य बहुलाश्व की वीरांगना बेटी को ब्याह लाए हैं। कहते हैं, सौ तने धनुषों की ताकत, अकेली रोहिणी मामी की बाईं भुजा में है। आर्यावर्त्त के पंक्तिबद्ध धनुर्धर एक ओर हों और गांधारी रोहिणी एक ओर हो, तो भारी पड़ती है। सुनता हूं, साक्षात रणचंडी हैं मेरी रोहिणी मामी। सिंह मामा ऐसी बाईं भुजा के रहते भी, इतने निराश कैसे हो गए····?'

—'कुछ भी हो बेटा, आखिर तो स्त्री है। कोमल-कांता ही ठहरी न!'

'पर यह कांता जब काली हो उठती है, तो कराली-कर्वाली हो जाती है, तात! गांधार की उस महाकाली को एक बार देखना चाहता हूं।'

—'उसी ने तो तुझे बुलाया है बेटा, तुरंत। चेटकराज के संदेश के साथ अनुरोध-पत्र तो रोहिणी का ही है। वह अविलंब तुझसे मिलना चाहती है।'

—'अहोभाग्य, पितृदेव! तो कल सवेरे बड़ी भोर हम प्रस्थान कर जाएंगे।'

—'साधु बेटा, साधु····!'

और मैं चलने को उद्यत हुआ कि महाराज सहसा बोले :

—'आए हो मेरे पास, तो एक बात तुमसे पूछनी है। तुम्हारी मां तक तुम्हारे मन की थाह न पा सकी। फिर भी एक बार हो सके तो रू-बरू तुम्हारा अंतरंग जानने की इच्छा होती है।'

—'इससे अधिक सुख मेरा क्या हो सकता है, कि आप मेरा मन जानें, मुझे जानें। आप निस्संकोच पूछें, मैं प्रस्तुत हूं।'

—'कलिंगराज जितशत्रु की बेटी यशोदा, कालोदधि समुद्र के मुक्ता-फल-सी मोहक सुनी जाती है। कहते हैं, उसकी कांति क्षण-क्षण नव्य-नूतन होती है। मन ही मन वह तुम्हारा वरण कर बैठी है। कहती है, केवल तुम्हारी नियोगिनी है वह, तुम हो एकमात्र उसके नियोगी पुरुष। जंबूद्वीप के अनेक राजपुत्र उसके पाणि-पद्म के प्रार्थी हैं। पर, उसने सारे मांगे लौटा दिए हैं। तुम्हारी बाट जोहती बैठी है। कलिंगराज संदेशों पर संदेश भेज रहे हैं। क्या कहते हो तुम?'

—'नियोगिनी मेरी कौन नहीं है, तात! लोक की सारी ही कुमारियां मुझे तो अपनी नियोगिनी लगती हैं। तब चुनाव का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सब स्वीकृत हैं मुझे, तो कलिंगराज-नंदिनी क्यों अस्वीकृत होंगी?'

—'सब नियोगिनी हैं, तब तो संबंध का सूत्र ही हाथ नहीं आता।'

—'संबंध का एकमात्र यही सूत्र मुझे स्वीकार्य है, बापू। यही एक सम्यक् और सच्चा संबंध हो सकता है। और, सारे सूत्र कम पड़ते हैं, क्योंकि वे क्षणिक और परिवर्तनशील हैं। नित्य और सत्य संबंध के अतिरिक्त और कोई संबंध मेरा तो हो नहीं सकता।'

—'समझा नहीं मैं?'

'नियोगिनियां तो कई जन्मों की जाने कहां-कहां होंगी मेरी। जाने कब कौन कहां मिल जाए, क्या उसका

दावा झूठ मानूंगा? स्वीकारते ही तो बनेगा। विवाह और अंतःपुर की सीमा में वे सब कैसे सिमटें?'

—'तो क्या विवाह नहीं करोगे?'

—'करना मैंने कुछ भी अपने हाथ नहीं रक्खा, बापू। जो है, जो होगा वह सब मेरा ही तो है। तब अलग से अपनाने की छूट कहां रह जाती है। जो सम्मुख आए, उस सबका स्वागत ही तो कर सकता हूं।'

—'प्रकट है कि विवाह तुम नहीं स्वीकारते और नियोगिनी तुम्हारे मन नगण्य है।'

—'नगण्य वर्द्धमान के लिए कुछ भी नहीं। सभी उसके मन वरेण्य हैं। अंतर केवल इतना है कि नियोगिनी नहीं, मुझे योगिनी चाहिए। नियोग मात्र नैमित्तिक और नाशवान है। केवल योग ही स्वायत्त और अविनाशी है। मेरे संबंधों का आधार है—नित्य योग, क्षणिक भोग नहीं। विवाह, नियोग और भोग में, वियोग अनिवार्य है। क्योंकि वह सब खेल मोह का है, मूर्च्छा का है, मोहिनी कर्म का है। सो मुझे नियोगिनी नहीं, वियोगिनी नहीं, योगिनी चाहिए।'

—'तो वह भी तो कहीं होगी ही और कभी आएगी ही! आखिर कब?'

—'वह कहीं और कभी से परे, सदा अभी और यहां है, देव! नहीं तो फिर योगिनी कैसी? देश और काल सापेक्ष जो है, वह योग कैसे हो सकता है, उसमें तो वियोग और मृत्यु बद्धमूल है।'

—'अभी और यहां है वह योगिनी तुम्हारी? मतलब····?'

—'मतलब कि वह तो भीतर के अंतःपुर में सदा प्रस्तुत बैठी है। भीतर गए कि उसके आलिंगन की बांहें फैली हैं, हमें समेटने को। ऐसा रमण जो विरमण जानता ही नहीं····!'

—'समझ रहा हूं, आयुष्यमान! समझ यहां समाप्त दीखती है। जो समझ से परे है, उसे समझने की कोशिश ही गलत है। काश, मैं संबुद्ध हो सकता।'

—'वह हैं आप, वह अन्यत्र और अगले क्षण में कहीं नहीं है। आप जो अपने को नहीं मानते, वही तो एकमात्र हैं आप····।'

पिता पराजित से अधिक प्रसन्न दीखे : अपने बावजूद, अपने आप हुए लगे।

—'तो कल प्रभात वेला में, आप मुझे सिंह-तोरण पर प्रस्तुत पाएंगे।'

महाराज उठ कर मुझे द्वार तक पहुंचाने को बढ़े, तब तक मैं जा चुका था।

× × × ×

उत्तर-पूर्व के कोण-वातायन पर, नीहार में नहा कर उठती-सी ऊषा फूट रही है। मैं तैयार होकर कक्ष में टहल रहा हूं। सहसा ही सिंहपौर पर मंगल का शंखनाद और घंटा-रव सुनाई पड़ा। फिर दुंदुभियों का घोष और अनेक प्रकार की तुरहियों का समवेत स्वर उठने लगा। रेलिंग पर से झांका, राजद्वार से लगा कर जहां तक मार्ग दीखा, नाना-रंगी फूलों और पल्लवों के वितान से छाई वीथी, कदली-स्तंभों के बने द्वारों में से होकर दूर तक चली गई है।

देखा कि ठीक सामने की ऊषा के रंग का ही उत्तरासंग और अंतरवासक धारण किए हूं। अनायास ही तो ऐसा हुआ है। तभी छत में दिखाई पड़ा, अपूर्व महार्ध श्रृंगार किए महारानी त्रिशला देवी-सी चली आ रही हैं। उनके दोनों हाथों में उठे सुवर्ण थाल में, मेरे जन्म-कल्याणक के समय सौधर्म इंद्र द्वारा लाए दिव्य रत्नों के किरीट-कुंडल, केयूर, मणिबंध, कंठहार और वस्त्राभूषण जगमगा रहे हैं। उनके अगल-बगल दो सुवेशिनी सुंदर प्रतिहारियां, विविध मंगल-सामग्रियों के थाल, मणि-कुंभ और एक रत्नजटित कोशवाली तलवार लिए चली आ रही हैं।

मां की चरण-रज ललाट पर चढ़ा कर, मैंने कहा—'क्या कोई भेंट लेकर जाना होगा वैशाली, मां? वहां कोई राजा और राज-दरबार भी है क्या?'

—'वह मुझे नहीं पता। मेरा राजा तो मेरे सामने खड़ा है। वह तो राजवेश धारण करेगा ही।'

—'सुनता हूं, वैशाली में तो जन-जन राजा और राजपुत्र हैं। फिर मैं कोई विशेष राजा बनूं, यह तुम चाहोगी?'

—'मेरा बेटा वैशाली का ही नहीं, तीनों लोकों का राजा है। राजराजेश्वर है!····'

कहते-कहते मां का गला भर आया। उन्होंने चौकियों पर थाल रखवा कर, सेविकाओं को जाने का संकेत दे दिया।

····विकल्प असंभव प्रतीत हुआ। आज की यह मां, केवल मेरी नहीं, भुवनेश्वरी जगदंबा लगीं। ····और राज्याभिषेक तथा श्रृंगार मैंने अपना नहीं, त्रैलोक्येश्वर का होते देखा। उसमें बाधक होना, क्या अहंकार ही न होता? मैं कौन होता हूं, कि वह स्वीकारूं या अस्वीकारूं! साक्षी और समर्पित हो कर वह नतशिर मैंने झेला। श्रीफल के साथ इक्ष्वाकुओं की परंपरागत महामूल्य तलवार महारानी-मां के हाथों में उठ कर, समक्ष प्रस्तुत हुई। मैंने सादर उसे दोनों हाथों में ग्रहण किया और अपने मर्मरी सिंहासन पर उसे लिटा दिया।····

—'वहां नहीं, कटि पर इसे धारण करेगा मेरा केसरी कुमार!'

—'नहीं मां, यह तलवार मेरी शैया ही हो सकती है, मेरा हथियार नहीं। तुम्हारी ढाली ये दो भुजाएं क्या कम हथियार हैं मेरे लिए! तलवार पर मैं सो ही सकता हूं, उसका भार मैं नहीं ढो सकता।'

—'क्षत्रिय का बेटा होकर, खड्ग धारण से इनकार करेगा, मान? अब तक तेरी हर हठ मैंने मानी, आज तुझे मेरी हठ रखनी होगी!'

'तुम्हारी हर हठ मैं पूरी करूंगा मां। अपनी दी देह का मनचाहा श्रृंगार तो कर ही लिया तुमने।···· पर मेरा क्षात्रत्व तलवार की सीमा नहीं स्वीकारता। वह उसके आगे का है, शस्त्रातीत है। वही लेकर वैशाली जा रहा हूं। क्या तुम चाहोगी कि मेरा प्रयोजन ही पराजित हो जाए?····'

मां निःशब्द इस पुत्र को पहचानती-सी देख रहीं। उनकी बड़ी-बड़ी आयत्त आंखों पर आरतियां-सी उजल उठीं। झुक कर मैंने तिलक धारण किया। मां ने मुझ पर अक्षत-फूल वारे। आंचल फैला कर ओवारने के लिए। माणिक की पायलों से मंडित मां के चरण-युगल में मैंने माथा ढाल दिया। उठा तो उनकी बांहों में था, और सर मेरा उनकी ग्रीवा और कंधे पर।····

····सिंहपौर पर अनवरत शहनाइयां, नक्काड़े, घंटा और शंख बज रहे हैं। मां की अगवानी में, राज-परिवार की केशरिया-वेशित रमणियां मंगल-प्रस्थान के रोमांचक गीत गा रही हैं। सहसा ही जामुनी कौशेय में आवरित ऊषा-सी वैनतेयी सामने आई। उसकी आंखों के नीर कितने दूरगामी लगे। उनमें ट्रॉय की करुण-मुखी हेलेन गंगा-स्नान करने आई है। उसका तिलक, श्रीफल, पुष्पहार झेलते एक अपूर्व रोमांच-सा अनुभव हुआ।····फिर तो जाने कितनी ही गौर बांहों पर उछलती फूल-मालाओं और पुष्प-वर्षा ने महाराज सिद्धार्थ को और मुझे ढांक दिया।

तुमुल जयकारों के बीच, मैं आगे खड़े अपने 'त्रिभुवन-तिलक' रथ पर आरूढ़ हुआ। और, उसके पीछे खड़े 'सूर्य ध्वज' रथ पर महाराज-पिता आरूढ़ हुए।···· पुष्प-पल्लव वितानों में डूबती गान-लहरियों को पीछे छोड़ते हुए हमारे रथ वैशाली के राजमार्ग पर धावमान थे।

× × × ×

····बहुशाल चैत्य-कानन को पार कर, हम दक्षिण कुंड-ग्राम से गुजरे। वहां के स्वागत-समारोह में सहसा ही एक पांडुर तापसी ब्राह्मणी ने आगे आकर जब मुझे पुष्पहार पहनाया, तो एक विचित्र पुलक-कंप का अनुभव हुआ। उसके मुक्त केशाविल आंचल की गंध जाने कैसी परिचित-सी लगी। भीतर के कान में जैसे किसी ने कहा—'महाब्राह्मण, तुम आ गए!'····ज्ञातृयों के समूचे कोल्लाग सन्निवेश में, उत्सवी प्रजा की उमड़ती भीड़ और दर्शनाकुल आंखों में अपना अपनत्व हारता-सा अनुभव हुआ। ····फिर बागमती नदी के तटांत से गुजरते हुए हम ठीक वैशाली के राजमार्ग पर थे। शारदीय फूलों से लदी, यक-सा तरुमालाओं में से गुजरते हुए देखा—आईने-सी स्वच्छ सड़क पर दोनों ओर की वनराजि मानो पन्ने की शिलाओं से तराश दी गई हैं। दोनों ओर के उपांतों में झांक रही थीं ठौर-ठौर कमलों भरी वन-सरसियां। कास फूलों के तटों वाली विजनवती नदियां। हंसों, चक्रवाकों, हरिणों के युगल-विहार। एक अद्भुत निर्मलता, लयात्मकता और पूर्णत्व का बोध हुआ। वैशालिकों की सौंदर्य-चेतना पर मुग्ध हुए बिना न रह सका। अलौकिक लगा यह प्रदेश—कोई स्वर्ग-पटल ही पृथ्वी पर अनायास जैसे उतर आया है।

एक जरा ऊंचे भूभाग के शीर्ष पर जब हमारे रथ आए, तो अप्रत्याशित ही दूर पर देव-नगरी वैशाली गर्वोन्नत खड़ी दिखाई पड़ी। अंतर-मध्यभाग में सात हजार सुवर्ण कलशों वाले उत्तुंग प्रासाद आकाशतटी को चूम रहे हैं। उसके बाद जरा नीचाई में चौदह हजार रौप्य कलशों वाले सौध जगमगा रहे हैं। और, तीसरे मंडल में उनसे किंचित नीचे इक्कीस हजार ताम्र कलशों वाले श्वेत भवन

बादलों पर सोपान रच रहे हैं। नारद की उजली कोमल धूप में भव्य धवल नगर-परकोट, कंगूरे, सिंहद्वार, वातायन, और सारी भवन-मालाओं को अतिक्रांत करते जिन-मंदिरों के रत्न-जटित शिखरों पर केशरिया-श्वेत ध्वजाएं उड्डीयमान हैं। इस मंडलाकार नगर की मनोज्ञ दिव्य रचना में एक ब्रह्मांडीय समग्रता की अनुभूति हो रही है।

···· परापूर्वकाल का स्मरण हो आया। सहस्रों वर्ष पूर्व त्रिकाल सूर्योदयी इक्ष्वाकु वंश के राजा तृणबिंदु ने, अप्सरा अलंबुषा के गर्भ में राजा विशाल को उत्पन्न किया था। उसी अप्सराजात राजपुत्र विशाल की लोकोत्तर कल्पना में से उसकी यह राजनगरी विशाला आविर्भूत हुई थी।

पृथ्वी पर उर्वशी की रूपज्योति का एक अवशिष्ट टुकड़ा है—यह वैशाली। उसके केशपाश से अकस्मात चू पड़ा एक सुवर्ण कमल। विश्वामित्र के साथ जनकपुरी जाते हुए भगवान रामचंद्र, विदेहों की इस वैभव-नगरी को देख कर मुग्ध हो गए थे। सूर्यवंश के इस ऐश्वर्य विस्तार को उन्होंने गौरवभरी आंखों से निहारा था। और, मैं इस विशाला का बेटा होकर भी, पहली बार इसके द्वार पर ठीक अतिथि की तरह आया हूं।

···· एकाएक पाया कि हम रत्नों, मणि-जालों और फूल-जालियों के वितानों से गुजर रहे हैं। अगल-बगल की पुष्पित वृक्ष-वीथियों को ही प्रियंगु-लताओं से गूंथ कर तोरणों की एक अंतहीन सरणि चली गई है। जाने कितने ही रंगों के फूलों की गंध और पराग से ओस-भीनी हवा गर्भिल और ऊष्म हो गई है। और, आसपास के ग्राम-जनों, कम्मकरों का भारी मेला चारों ओर मचा है। रंग-बिरंगी सज्जाओं में युवा-युवतियों के यूथ राह में धमकते-गमकते, नाना वादित्रों के साथ गान-नृत्य करते दिखाई पड़े। और, सहस्रों कंठों से जाने कितनी जयकारें गूंज रही हैं।

····हमारे रथ विशाला के विशाल नगर-तोरण पर आ पहुंचे। सुवर्ण की नक्काशी वाले इस तुंग मर्मर तोरण के शीर्ष पर शिखर-मंडित देवालय में अरिहंत की चतुर्मुखी भव्य प्रतिमा विराजमान है। अगल-बगल के पच्चीकारी वाले प्रकांड वातायनों में नक्काड़े और जय-भेरियां बज रही हैं। उनके रेलिंगों पर से पंक्तिबद्ध बालाओं की चंपक-गौर बांहें फूलों की राशियां बरसा रही हैं। कारु शिल्प से मंडित तोरण के द्वार-पक्षों के विशाल आलयों में अखंड जोत महादीप जल रहे हैं। सुवर्ण खचित हाथी दांत से मढ़े नगर कपाटों की पच्चीकारी इंद्र की ईशानपुरी के प्रवेशद्वार का स्मरण कराती है। सिंहपौर के दोनों ओर सुवर्ण-झूलों से अलंकृत धवल हस्तियों की पंक्तियां शुंड उठा कर प्रणाम कर रही हैं। विशाला के पुराचीन इक्ष्वाकु शंखों की ध्वनियां दिगंतों को हिला रही हैं।

एक परम लावण्यवती केशरवर्णी कुमारिका ने द्वार के बीच खड़े होकर सहस्रदीप आरती उतारी। महानायक सिंहभद्र भव्य लिच्छवि राजवेश में अनेक कुल-पुत्रों के साथ हमारे स्वागत को सामने प्रस्तुत हैं। उनके अभिवादन के साथ ही सहस्रों कंठों का एक महारव गूंज उठा :

ज्ञातपुत्र वर्द्धमान कुमार जयवंत हों····

लिच्छविकुल-सूर्य वर्द्धमान महावीर जयवंत हों····

कुंडपुराधीश्वर महाराज सिद्धार्थ जयवंत हो····

वैशाली गणतंत्र अमर हो : वज्जियों का गणसंघ जयवंत हो····

द्वार में प्रवेश करते ही लक्ष-लक्ष कंठों से अनवरत जयध्वनि होने लगी—'इक्ष्वाकु-नंदन महावीर जयवंत हो! ····वैशाली का गण-केसरी महावीर जयवंत हो!'—राज-मार्ग से लगा कर, परकोटों के कंगूरे और दोनों ओर के भव्य भवनों के चबूतरे, अलिंद, वातायन, गवाक्ष, छत, छज्जे, पारावार नर-नारियों की रंगछटा से चित्रित-से लग रहे हैं। फूल, गुलाल, अबीर, मणि-चूर्णों की चहुं ओर से वृष्टि हो रही है। आगे-आगे विपुल वैभव के इंद्रजाल सी शोभा-यात्रा अनेक वादित्रों, पताकाओं, रथ-श्रेणियों, सुसज्जित अश्वों, हाथियों के साथ चल रही है। महार्ध वेश-भूषा से शोभित कुलांगनाएं और बालाएं वातायनों पर से मणि-माणिक्य और फूलों की हार-मालाएं निछावर कर रही हैं। रथ के अश्वों, कलशों और खंबों पर फूलों के ढेर लग गए हैं। अनवरत जयकारों से आलोड़ित इस जन-प्रवाह को मैंने शोभा के एक पारावार की तरह उमड़ते देखा। और, सहसा अनुभव किया कि वह महासमुद्र मेरे भीतर मूर्तिमान होकर, एकाकी उस विशाल जन-प्रवाह की तरंगों पर चल रहा है।···· और अगले ही पल, पर्वतों-से डग भरते उस विराट पुरुष को अपने में से निष्क्रांत हो कर मैंने चलते हुए देखा। वैशाली की इस लक्ष-कोटि प्रजा

शेष पृष्ठ 39 पर

विजय नाहटा की कविता

इसलिए नहीं कि

इसलिए नहीं कि—
बहुत सुंदर से बहाने हों
कि जिंदगी जिनके सहारे
मुंदे नयन खोलती है।
या कि—सहसा सबकुछ
लयबद्ध हो गया हो
कि दुख की कोई क्षीण-सी
चीख भी सुनाई न दे
या कि आनंद के उत्कर्ष में सराबोर
एक हवन कुंड हो कामनाओं का
प्रतिपल होमते रहें
प्रश्नों औ' जिज्ञासाओं की अंतहीन समिधाएं

इसलिए नहीं कि—
कहने को विस्तृत आख्यान हों
और रह गए हों थोड़े से थरथराते शब्द
या कि थोड़ा-सा मुहूर्त शेष हो;
और रह गए हों अनगिन लंबित काम

इसलिए नहीं कि—
अनुग्रह और उम्मीद के बीच कोई गठबंधन हो
और; उठ कर फिर कोई कंदील न जलाई जाए

इसलिए नहीं कि—
एक अपूरणीय अवसर को हाथ से फिसलते
देख लिया जाए
फिर तमाम दृश्यमान वैभव से गुजरने के बाद
बुझी हुई कृतज्ञता के साथ पहुंचा जाए अंततः
जीवन के शाश्वत मर्म-स्थलों पर
जो प्राप्त है: नैसर्गिक दाय जो ठहरा
वरन जो अप्राप्य, अछूता, अनमोल है
उसके लिए की जाए मौन के अथाह में
विनीत प्रार्थनाएं निःशब्द

इसलिए नहीं कि—
फिर कभी मिलेंगे बीच राह कि प्रयाण-स्थल पर
एक दूजे को अलविदा कहें नम आंखों से
और संभावना की प्रतीक्षा में अधीर बैठ जाएं।

महज इसलिए नहीं कि—
प्रमादी उदासीनता को विरक्ति मान लिया जाए
कि यूं ही कट जाएगी; जिंदगी महज
इत्तेफाक है
और हर रोज—एक दिन कम आंक लें जिंदगी के
रोजनामचे में और कि तारीख बदल लें

इसलिए नहीं कि—
बहुत-सी नुची हुई वनस्पतियों
रात्रि के बासी फूलों की नियति
कीटभंगुरों के निर्मम रौंदे जाते शवों या कि
कामगारों की अज्ञात मृत्यु पर खामोश विलाप
जो कि एक अघटना है; की तरह
गुमनाम-सा हो जाए जिंदगी का धवल कैनवास
और विराट अंतरिक्ष-सा कर्म मैदान
हमारे पुरुषार्थ के प्रक्षेपण से अछूता रह जाए

इसलिए कि जीवन अवसरों का समुच्चय है
कि हवा में घुली अदृश्य आग प्रयाण को
उठ चुके कदमों के घर्षण से होती है:
प्रज्वलित
जिंदगी के तमाम फलसफों से निकल बाहर
एक सर्द सुबह में—
विचार से परे निर्विचार के सघन संसार में
विचरते, तुम।
—कि अवसर का एक तिनका दबाए चोंच में
समग्र उत्ताप से गुजर जाए एक नन्ही चिड़िया

इसलिए कि—
एक लघुतर क्षण के आलोक में सहसा
उत्कर्ष के सहस्र पारावार खुल जाएं
कि सृष्टि का महापर्व एक क्षण के
उजास में समा जाए। ❖

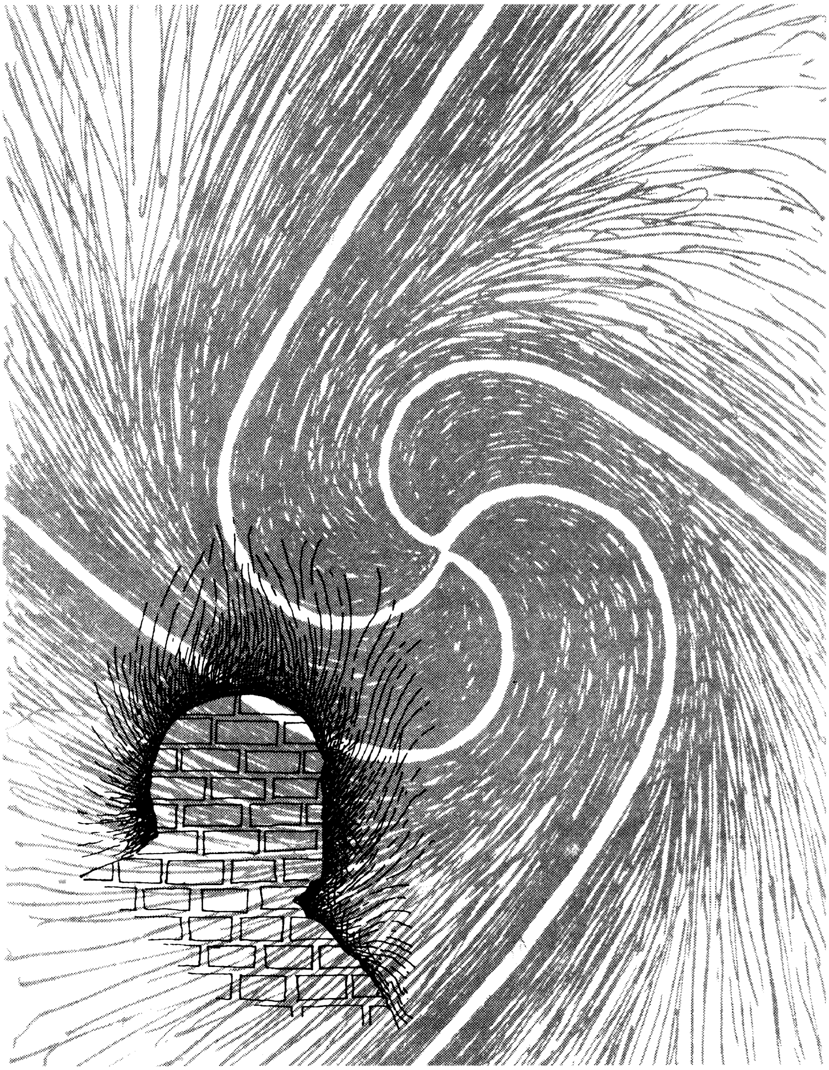

शीलन

जो वृत्ति अभी अपनी आत्मा की नहीं हुई है, उसे एकदम अंगीकार कर लेना भयावह ही है। अंतरंगी आसक्ति होते हुए संन्यासी हो जाना समाज का और अपना अधःपतन ही है। जिसके मन में शिक्षा के प्रति आस्था नहीं है, यदि वह स्कूल में पढ़ाता है तो उससे उसको तो संतोष होता ही नहीं है, राष्ट्र की भावी पीढ़ी की भी अपार हानि होती है। भले ही समाज में हमारा वर्ण यदि छोटा समझा जाता है, तब भी उस वर्ण के अनुरूप समाज की सेवा करते रहने में ही विकास होता है। पानी की अपेक्षा दूध कीमती है, पर मछली पानी में ही बढ़ती है, दूध में तो वह जीवित भी नहीं रहेगी।

— पांडुरंग सदाशिव साने

❁ अभिनिष्क्रमण दिवस : पावन स्मरण ❁

चैत्र शुक्ला नवमी

❑ 12 अप्रैल ❑

आचार्यश्री भिक्षु : एक आत्मार्थी महापुरुष; एक विलक्षण स्रष्टा

❁ साध्वी जयमाला ❁

महापुरुषों का जीवन नित-नूतन और सदा निराला ही कहलाता है। उनका हृदय विशाल होता है और वे सुख में कभी प्रफुल्लित नहीं होते, तो दुख आने पर कभी अपने पथ से विचलित नहीं होते। हर स्थिति में शांत-चित्त रहना ही उनका मूल स्वभाव होता है। महापुरुषों का जीवन्न-चरित्र संसार का मूल्यवान और मननीय इतिहास होता है। वे लोक मर्यादा का खयाल रखते हुए भी कभी लकीर के फकीर नहीं होते। जहां साधारण आदमी किसी बात पर अधीर हो जाते हैं, वहां महापुरुष हिमालय की तरह निश्चल और अडिग रहते हैं। महापुरुष कंटकाकीर्ण पथ पर चलते हुए कभी हिचकते नहीं हैं और सदा दूसरों के पथ-दर्शक बनते हैं।

आचार्यश्री भिक्षु का जीवन भी ऐसे ही उच्च महापुरुषों की गणना में आता है। पाली जिले के कंटालिया ग्राम में विक्रम संवत 1783 में पिता बल्लूशाह तथा माता दीपांजी की कुक्षि से वे अवतरित हुए। कुछ समय के पश्चात् पिता का साया सिर से उठ गया। माता दीपां ही बच्चे के लिए एकमात्र सर्वेसर्वा थीं। अल्पायु में आपको शादी के बंधन में भी बांध दिया गया, मगर आपका मन सदैव अंतर्मुखी बना रहा। शादी के पश्चात् पत्नी को भी संयम के लिए तैयार कर लिया, लेकिन अल्प-व्याधि में ही पत्नी का वियोग हो गया। पत्नी के अचानक वियोग से आपका मन संयम के लिए और अधिक सुदृढ़ हो गया। तप-त्याग, ध्यान, स्वाध्याय में समय बीतने लगा। माता को इस बात का जैसे ही पता चला तो मां ने साफ इंकार कर दिया और कहा—'बेटा! तेरे पिताजी व पुत्रवधू मुझे मंझधार में छोड़ गए, अब मेरे लिए तू ही एकमात्र सहारा है। अगर तू भी मुझे छोड़कर साधु बन जाएगा तो मेरा कौन सहारा होगा?'—मां

> *"धीरे-धीरे आम जनता ने आपको समझा और निकट आने लगे। तत्त्व को गहराई से समझने लगे। श्रावक-श्राविका का रूप बना और साधु-साध्वियों की दीक्षाएं भी हुईं। तेरापंथ धर्मसंघ सुव्यवस्थित, सुसंगठित, मर्यादित और अनुशासित धर्मसंघ बन गया। भिक्षु स्वामी ने देखा—संघ विस्तार पा रहा है, अतः इसे व्यवस्थित रखने के लिए मर्यादाओं का निर्माण जरूरी है। वह इसलिए कि साधु-संस्थानों में यदि मर्यादा नहीं होगी, अनुशासन नहीं होगा तो शैथिल्य आएगा। इससे उच्छृंखलता, स्वच्छंदता बढ़ेगी। वे स्वयं इसी बात के भुक्तभोगी थे। अपने आठ वर्षों के जीवन में उन्होंने इन बातों का गहराई से अनुभव किया था। अपने नवोदित धर्मसंघ को वे इन बातों से दूर रखना चाहते थे। अतः समय-समय पर सजगता के साथ मर्यादाओं की लक्ष्मण रेखाएं खींचते गए। आज उसी का व्यवस्थित रूप जन-जन का आकर्षण केंद्र बना हुआ है।"*

की ममता इस तरह घर-संसार की ओर खींच रही थी, पर पुत्र भीखण के अंतःस्तल में वैराग्य की भावना का ज्वार उमड़ रहा था। वे अतिशीघ्र संयम लेने हेतु उतावले हो रहे थे।

आखिर में तत्कालीन स्थानकवासी आचार्यश्री रुघनाथजी के सम्मुख उन्होंने अपनी भावनाएं व्यक्त कीं।

आचार्यश्री रुघनाथजी ने भीखण को देख कर सोचा—यह युवक बड़ा बुद्धिमान और विलक्षण लग रहा है। वे नौजवान भीखण की मां को समझाने के लिए तत्काल चल पड़े और तर्कयुक्ति से समझा कर मां की अनुमति प्राप्त कर ली। वह समय था विक्रम संवत 1808 का। आचार्यश्री रुघनाथजी ने युवक भीखण को अपने धर्म-संघ में दीक्षित कर लिया। वे आठ वर्ष तक गुरु के साथ रहे और आगम शास्त्रों का गहराई से अध्ययन कर गहरा ज्ञान प्राप्त किया। गुरु का अपरिमेय वात्सल्य और संपूर्ण धर्मसंघ की श्रद्धा उनको प्राप्त थी, पर जो मुनिचर्या आगमों में बतलाई गई थी, मुनियों के जीवन-व्यवहार में वह चर्या नहीं मिली। मुनि भीखण चिंतन करते कि भगवान महावीर ने मुनि का जो आचार-विचार बतलाया है, वह सम्यक्रूपेण नजर नहीं आ रहा है। उनके मानस में तीव्र प्रतिक्रिया जागृत हुई। इस प्रतिक्रिया के निमित्त बने राजनगर के श्रावक। इस नगर के श्रावकों में कुछेक आगम शास्त्र के अच्छे जानकार थे। उनके मन में मुनियों की आचार-शिथिलता के प्रति शंकाएं पैदा होने लग गई थीं।

संत भिक्षु के मन में भी आचार और विचार को लेकर भारी उद्वेलन चल रहा था। उनको भी खामियां-कमियां नजर आ रही थीं। आचार्यश्री रुघनाथजी राजनगर के श्रावकों की इस मनोदशा से अवगत थे और चिंतित भी। उन्होंने अपने होनहार शिष्य संत भीखण आदि कतिपय संतों को राजनगर भेजा। आचार्यश्री रुघनाथजी ने संत भीखण को भेजा तो था कि वे राजनगर के श्रावकों को समझाकर उनके संशय दूर करेंगे, पर संत भीखण को लगा कि श्रावकगण शास्त्र-सम्मत दृष्टि से अपनी जगह सही हैं। अतः आगमों के अध्ययन से जो नवनीत संत भीखण को हाथ लगा, उसे गुरु के सम्मुख रखने की योजना बनाई, पर सहवर्ती संत वीरभाणजी के कारण मुनि भिक्षु की योजना में एक बड़ा विघ्न उपस्थित हो गया। आचार्यश्री रुघनाथजी को राजनगर के घटनाक्रम की जानकारी पहले ही हो गई। नतीजतन मुनि भीखण के प्रति प्रथम दर्शन में ही आचार्यश्री रुघनाथजी की दृष्टि मनोनुकूल नहीं रही।

उन्होंने आचार्यश्री रुघनाथजी को शास्त्र सम्मत दृष्टि के प्रति सहमत करने का भरसक प्रयत्न किया और विनम्रता के साथ समय-समय पर अपना मत प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया, मगर स्थिति जटिल बन चुकी थी। वह सुलझी ही नहीं। विचार-भेद के साथ आचार-भेद भी ज्वलंत विषय था। यदि इन्हें सुधारने का आश्वासन मिलता तो बात बनती और कुछ चिंतन-बिंदु आगे बढ़ते, पर स्थिति आगम-विचारों के अनुरूप हो ही नहीं सकी। अंततः संत भीखणजी को विवश हो अपना अलग पथ चुनने का निर्णय करना पड़ा।

विक्रम संवत 1817, चैत्र शुक्ला नवमी का दिन धर्म क्रांति का अवसर बना। इसी दिन नई दिशा में चरण आगे बढ़े। यह अभिनिष्क्रमण का दिन था और इसी के साथ विरोधों का भयंकर तूफान खड़ा हो गया। रोटी, कपड़ा और मकान जीवनयापन की आवश्यक सामग्री होती है, इनका अभाव पग-पग पर मुंह-बाये खड़ा होने लगा। फिर भी दुर्द्धर्ष मनोबली मुनि भिक्षु घबराए नहीं, न अपने पवित्र पथ से हटे। भयंकर परिस्थितियों का साहस से मुकाबला किया। कहा भी है—

अडिग रहा जो अपने पथ पर, लाख मुसीबत आने पर।
मिली सफलता उसको जग में, जीने और मर जाने पर।

यह तेरापंथ के उदयकाल की कहानी है। अंततः आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को केलवा (मेवाड़) में आगम-सम्मत भागवती दीक्षा ग्रहण की। यही दिन तेरापंथ का स्थापना दिवस माना गया, पर आचार्यश्री भिक्षु का प्रारंभ में यह मंतव्य नहीं रहा कि वे अपने धर्म का कोई नामकरण करेंगे। आत्मशुद्धि की प्रबल भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने प्रस्थान किया था, पर सहज ही एक नया मार्ग बन गया। आज यही मार्ग राजपथ बन गया है। कहा भी है—'**महाजनो येन गतः सः पन्थः**—महापुरुष जिस मार्ग पर चलते हैं, वही राजमार्ग बन जाता है।' उनका अनुगमन करने वाले सर्वत्र तैयार खड़े मिलते हैं।

तब स्वामीजी (संत भीखणजी) के साथ तेरह साधु

और तेरह ही श्रावक थे। जोधपुर में एक दुकान में श्रावकगण सामायिक आदि धर्माराधना कर रहे थे। तत्समय के दीवान फतहसिंहजी उधर से गुजरे। उन्होंने बाजार में दुकान पर श्रावकों को धर्माराधना करते देख पूछ लिया कि आज स्थानक छोड़ कर धर्माराधना यहां कैसे की जा रही है? उनमें से ही एक श्रावक ने संत भीखणजी की धर्मक्रांति की बात बताई। उन्होंने पूछा—'इसमें कितने साधु और कितने श्रावक हैं?'—तब श्रावक ने कहा—'तेरह साधु हैं और हम भी तेरह ही हैं।'—पास में ही सेवक जाति के एक व्यक्ति खड़े थे जो दीवान फतहसिंहजी के साथ थे। उन्होंने यह बात सुनली। वह कवि हृदय थे और उनने उसी क्षण एक पद रचा और सुनाया—

साध-साध रो गिलो करे, तो आप आपरो मंत।
सुणल्यो रे शहर रा लोगां, ए तेरापंथी तंत।।

यही पद तेरापंथ के नामकरण का आधार बना और देखते-देखते सबके सामने एक नए संप्रदाय का प्रादुर्भाव हो गया।

यह घटना जब मुनि भीखणजी को बतलाई गई, तो वे अपना आसन छोड़ कर वंदना की मुद्रा में बैठ कर बोले—'हे प्रभो! यह तेरापंथ'—यानी तुम्हारा पंथ है। हम तो इस पथ के पथिक मात्र हैं।

आचार्यश्री भिक्षु ने अपने विलक्षण बुद्धि-कौशल से सामान्य रूप में उच्चरित शब्द से ऐसा गंभीर व शाश्वत अर्थ निकाल लिया। वे प्रबुद्धचेता और दूरदर्शी थे। उन्होंने उस स्थिति में धर्मक्रांति की जब धार्मिक संस्थाओं में जड़ता और शून्यता व्याप्त हो रही थी।

आचार्यश्री भिक्षु के विचारों में न प्राचीनता का आग्रह था और न ही अर्वाचीनता का व्यामोह। आपने स्पष्ट कहा—'जिस तत्त्व की वर्तमान में कोई सार्थकता न हो, उसको ढोने से क्या लाभ?'—इसी के आधार पर उन्होंने रूढ़िवाद, अंध-विश्वास और जड़ परंपरावाद के विरुद्ध बिगुल बजाया। इसी कारण उनका घोर विरोध हुआ। हर महापुरुष के साथ जो घटित होता है, ठीक वैसा ही आचार्यश्री भिक्षु के साथ भी हुआ। विक्रम संवत 1817 से विक्रम संवत 1832 तक पंद्रह वर्ष का समय विकट संघर्षों का समय रहा। ऐसे वातावरण में हर कोई व्यक्ति टिक नहीं पाता। मगर, वे तो लौह-पुरुष थे, जिन्होंने कभी हार नहीं मानी। कहा भी है—

धुन के पक्के कर्मठ मानव,
जिस पथ पर चढ़ जाते हैं
सौ-सौ अवरोधों में भी वे,
मंजिल को पा जाते हैं।

वे अपने साधना-पथ से कभी विचलित नहीं हुए, न ही कभी थकान महसूस हुई। निराशा के कुहासे ने उन्हें घेरा नहीं, अपितु और अधिक दृढ़ता से वे अपने सहयोगियों का मनोबल बढ़ाते रहे। शुद्ध भावों से की गई साधना आखिरकार रंग लाई। उनकी कामना फलीभूत हुई।

धीरे-धीरे आम जनता ने आपको समझा और निकट आने लगे। तत्त्व को गहराई से समझने लगे। श्रावक-श्राविका का रूप बना और साधु-साध्वियों की दीक्षाएं भी हुईं। तेरापंथ धर्मसंघ सुव्यवस्थित, सुसंगठित, मर्यादित और अनुशासित धर्मसंघ बन गया। भिक्षु स्वामी ने देखा—संघ विस्तार पा रहा है, अतः इसे व्यवस्थित रखने के लिए मर्यादाओं का निर्माण जरूरी है। वह इसलिए कि साधु-संस्थानों में यदि मर्यादा नहीं होगी, अनुशासन नहीं होगा तो शैथिल्य आएगा। इससे उच्छृंखलता, स्वच्छंदता बढ़ेगी। वे स्वयं इसी बात के भुक्तभोगी थे। अपने आठ वर्षों के जीवन में उन्होंने इन बातों का गहराई से अनुभव किया था। अपने नवोदित धर्मसंघ को वे इन बातों से दूर रखना चाहते थे। अतः समय-समय पर सजगता के साथ मर्यादाओं की लक्ष्मण रेखाएं खींचते गए। आज उसी का व्यवस्थित रूप ज़न-जन का आकर्षण केंद्र बना हुआ है।

आचार्यश्री भिक्षु ने देखा—अगर मर्यादा व अनुशासन नहीं होगा तो बिना लगाम का घोड़ा, बिना अंकुश का हाथी जैसे स्वच्छंद होता है—वही दशा धर्मसंघ की होगी। अतः संघ-संगठन की दृष्टि से मर्यादाओं को महत्त्व दिया। सर्वाधिक महत्त्व तो इस बात में बतलाया कि संघ को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है कि संघ का नेतृत्व एक आचार्य के हाथ में ही रहे। संघ के सर्वाधिकार आचार्य के हाथों में सुरक्षित रहें। उन्होंने कहा—'कोई भी साधु-साध्वी अपना शिष्य-शिष्याएं न बनाएं और आचार्य भी योग्य व्यक्ति को ही दीक्षित करें। अगर दीक्षा देने के बाद कोई अयोग्य निकल जाए, तो उसे संघ से अलग कर दें।'

संघ की सुरक्षा के लिए गतिशीलता, दीर्घजीविता, तेजस्विता और प्राणवत्ता बनाए रखने के लिए कुछ विशेष संकल्प-सूत्रों का अलग-अलग निर्माण किया। ये लेख-पत्र, मर्यादा-पत्र तेरापंथ धर्म-संघ के संगठन पक्ष को बहुत सुदृढ़ बनाए हुए हैं। एक आचार, एक विचार और एक प्ररूपणा से ये मर्यादाएं आबद्ध हैं, जो वर्तमान में विद्यमान भारी स्वच्छंदता के दौर में आश्चर्यकारी हैं। संघीय-विकास की दृष्टि से संपूर्ण आस्था एकमात्र आचार्य पर केंद्रित होना आवश्यक है। साथ ही संघबद्ध साधना में परस्पर सामंजस्य नहीं हो, तो साधना संभव नहीं है और न सफलता संभव है।

संघबद्ध साधना का पहला सूत्र है—अहंकार का विलय। अहंकार-मुक्त शिष्य अपनी विनम्रता से आचार्य सहित अन्य संतों का भी दिल जीत सकता है। संघबद्ध साधना में दूसरा सूत्र है—आत्म-निरीक्षण। अपने-आपको देखने की क्षमता का विकास। आगम शास्त्र में कहा है—**'संप्पिखए अप्प गमव्वरणं'**—अपने-आपको देखो, स्वयं-स्वयं को देखो। आत्मा का कल्याण व संघ की तेजस्विता तभी बढ़ेगी। इसका तीसरा सूत्र है—अपूर्णता का बोध। साधक को अपनी अपूर्णता की अनुभूति होनी चाहिए। कोई भी छद्मस्थ साधक पूर्ण नहीं होता। अतः अपनी गलतियों का सुधार करना आवश्यक है। संघबद्ध साधना का चौथा सूत्र है—पारस्परिक सहयोग। प्रत्येक साधक को किसी न किसी रूप में सहयोग की अपेक्षा रहती है। सापेक्षता की अनुभूति संघबद्ध साधना का मूल मंत्र है। संघबद्ध साधना का पांचवां सूत्र है—संविभाग और स्वार्थ-सीमा में विश्वास। जिसका मन संविभाग में विश्वास नहीं चाहता, अकेला ही अपने-आपको भरना चाहता है, वह संघबद्ध साधना नहीं कर सकता। संघबद्ध साधना का छठा सूत्र है—व्यवहार का बोध। जो साधक अपने व्यवहार में सामंजस्य बिठाना जानता है, वही संघबद्ध साधना कर सकता है। जिसमें व्यवहार का बोध नहीं है, जो व्यवहार में सामंजस्य बिठाना नहीं जानता, वह संघबद्ध साधना का जीवन नहीं जी सकता। जो परिस्थिति से समझौता करना सीख लेता है, वह संघीय जीवन में कभी असफल नहीं होता। सामंजस्य बनाए रखना संघबद्ध साधना का प्रमुख तत्त्व है। संघबद्ध साधना का सातवां सूत्र है—कषायजनित भावों का संतुलन। जो साधक कषायजनित भावों का संतुलन करना जानता है, सहन करना जानता है, उसी साधक के लिए संघबद्ध साधना संभव है। जो साधक क्रोध और क्रोध से होने वाली प्रवृत्तियों, अहंकार और अहंकार से होने वाली प्रवृत्तियों से ग्रस्त है, वह संघबद्ध साधना में लीन नहीं रह सकता। जो साधक इनमें संतुलन करना जानता है, वही संघबद्ध साधना कर सकता है। संघबद्ध साधना का अंतिम सूत्र है—सहिष्णुता। संघीय जीवन में जो छोटा है, वह बड़े को सहन करे और जो बड़ा है, वह छोटे को। अगर दोनों में से एक भी सहन नहीं करेगा तो संघबद्ध साधना संभव नहीं हो सकेगी। अतः आवश्यक है कि अहंकार विलय, आत्म-निरीक्षण, अपूर्णता का बोध, परस्परता, संविभाग, सामंजस्य-संतुलन और सहिष्णुता का उत्तरोत्तर विकास हो। यह सब होने से ही संघबद्ध साधना आसानी से संभव हो सकती है। जिस संघ में यह नहीं है, वहां संघबद्ध साधना भी संभव नहीं है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने भी संघबद्ध साधना करने वाले साधकों के लिए इन सभी बातों को अनिवार्य बताया है।

आज तेरापंथ धर्मसंघ सुव्यवस्थित और सुसंगठित है। वह इसलिए है कि तेरापंथ संघबद्ध साधना के सूत्र में बंधा हुआ है। एक आचार्य के अनुशासन में चल रहा है। साधु-वर्ग छोटी-छोटी शाखाओं में बंटा हुआ नहीं है। अतः वह शक्ति-संपन्न है। तेरापंथ का जो विकास आज हुआ है, वह अनुशासन और सुकौशल व्यवस्था के कारण हुआ है। आचार्यश्री भिक्षु ने सबको समानाधिकार दिए हैं। दीक्षा, शिक्षा, क्षेत्र, वस्त्र-पात्र आदि सभी में समान अनुशासन और समान रीति-नीति है। साधु-साध्वियों के विकास में किसी तरह का अंतर या भेद नहीं समझा गया है। इसीलिए साध्वी समाज भी आज साधुओं के समकक्ष अपनी साधना में सजग रहते हुए अध्ययन-अध्यापन से लेकर समस्त गतिविधियों में समान रूप से आगे है।

तेरापंथ धर्मसंघ में समतावाद का अनूठा प्रयोग हुआ है। सब श्रमिक हैं, तो सब के सब पंडित भी हैं। सामुदायिक कार्यों का पूर्णतया संविभाग होता है। छोटे-छोटे समूह बने हुए हैं। संतों का दो-तीन का समूह और साध्वियों का तीन-चार या पांच का समूह है। सभी के मध्य उपयोगी वस्तुओं का परस्पर संविभाग होता है और उन्हें काम में लिया जाता है। सब श्रमजीवी व स्वावलंबी जीवन जीते हैं।

आचार्यश्री भिक्षु ने जिस प्रबल श्रम से इस धर्मसंघ की नींव डाली, उसी नींव पर उत्तरवर्ती आचार्यों ने तेरापंथ

को अधिक सुदृढ़ बनाया है। सैकड़ों त्यागी-तपस्वी और बलिदानी साधु-साध्वियों के तपोबल से, उनके दृढ़ मनोबल से तेरापंथ आगे से आगे विकास में सहभागी बना है। इसीलिए देश-विदेश में जैन धर्म और तेरापंथ की अनुगूंज सुनाई दे रही है।

सिर्फ 251-252 वर्ष में तेरापंथ ने अपनी सुदृढ़ पहचान बनाई है। इसका श्रेय तेरापंथ के हर-एक आचार्य को है। वर्तमान सदी में यह श्रेय आचार्यश्री तुलसी और विश्वविश्रुत महान दार्शनिक आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को है, जिन्होंने अपने बुद्धि-कौशल से तेरापंथ का मौलिक स्वरूप यथावत बनाए रखते हुए अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवनविज्ञान और अहिंसा समवाय जैसे स्तंभ खड़े किए और इनके माध्यम से जन-जन तक तेरापंथ को पहुंचाया है। वर्तमान में आचार्यश्री महाश्रमणजी इसी ओर अनवरत अग्रसर हैं।

आज आचार्यश्री भिक्षु के उदात्त विचारों को आधुनिक रूप और शैली में प्रस्तुत करने की जरूरत गहनता से महसूस की जा रही है और इस दिशा में गंभीर प्रयत्न भी होने लगे हैं। आज यह धर्मसंघ अपनी श्रमशीलता, कर्मशीलता व चरित्रशीलता के बलबूते पर लगातार आगे बढ़ रहा है। यही बात अब अन्य संगठनों के लिए अनुकरणीय भी होनी चाहिए। ❖

आचार्यश्री भिक्षु : एक विजितात्मा; एक अध्यात्म योगी

पृष्ठ 23 का शेष

अध्यात्म योगी मुनि भिक्षु ने अपने शिष्यों को अंतिम शिक्षा भी यही दी कि स्थिरचित्त होकर भगवान के मार्ग का अनुसरण करो। दुर्बुद्धि और दुराग्रह को छोड़कर आत्मा की उज्ज्वलता हो—वैसा कार्य करते रहो। उन्होंने कहा—शुद्धाचार की आराधना में कभी स्वल्पमात्र भी मत चूकना। समिति, गुप्ति, महाव्रतों का सावधानीपूर्वक पालन करना। शिष्य-शिष्याओं पर तथा वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों पर किसी प्रकार का ममत्व मत रखना। पुद्गल आसक्तियों में मत फंसना। संयम में शुद्ध मन से अनुरक्त रहना। *(भिक्षु जसरसायण)*

ऐसे योगयुक्त, विशुद्ध, विजितात्मा, जितेंद्रिय, अध्यात्म योगी आचार्यश्री भिक्षु को शतशः नमन करते हुए हर-एक को आत्म-संतोष हो सकता है। ❖

कहानी : वैशाली के संथागार में

पृष्ठ 31 का शेष

की बाहुओं को मैंने अपनी भुजाओं में आत्मसात और उद्दंडायमान अनुभव किया।

····भवनों, द्वारों, शिखरों, गवाक्षों, विपुल वैभवों, सज्जाओं, सहस्रों मानव-मुखों को मैंने एक पूंजीभूत प्रभा के रूप में देखा। एकाग्र और समग्र हो गया वह सौंदर्य-दर्शन। मैंने मां वैशाली का भव्योज्ज्वल किरीट-मंडित मुख-मंडल आंखों आगे जाज्वल्यमान देखा। ····मां के सीमांत पर एक अमर सिंदूरी ज्वाला जल रही है। मेरा माथा बरबस ही झुक गया। एक विशद चतुष्पथ से गुजरते हुए एकाएक सारथि ने कहा—'भंते कुमार! यह है देवी आम्रपाली का सप्तभूमिक प्रासाद!'

सुवर्णिम हाथियों पर खड़े अपने भव्य तोरण पर आरूढ़ सप्तभूमिक प्रासाद की रत्न-छटा को एक झलक देखा। कि हठात एक बड़ा सारा पद्म-गुच्छ आकर मेरे पैरों पर पड़ा। उसके बीचों-बीच स्तंभित श्वेत ज्वाला-सा एक हीरा झगर-झगर झलमला रहा था। कमल-गुच्छ को उठा कर सन्मुख किया तो पाया कि उस सूर्याभ हीरे के दर्पण में मेरा समस्त एकबारगी ही प्रतिबिंबित हो उठा है। और, एक पदनख मेरी छाती में गड़कर गहरा उतरता ही चला गया। एक असह्य जख्म मेरी वज्रवृषभ संधियों में कसक उठा। एक वह्निमान तीर-सा प्रश्न सामने खड़ा उत्तर मांग रहा है। '····हां, वही उत्तर देने तो आया हूं, मां!'

····नगर के केंद्रीय चौक में हमारे रथ आ लगे। असंख्य लहरों में उमड़ते मानव-महासागर की जय-निनादों पर तैरते अपने रथ को एकाकी समक्ष देखा। ····लक्ष-लक्ष आंखों के प्यार के केंद्र बने एक सूर्य-पुरुष को रथ में आसीन देखा। स्वयं डूब गया उन लाखों आंखों में और उनके लक्ष्य को देख स्तब्ध रह गया। मैं नहीं रहा, वही रह गया।···· ❖

क्रमशः शेष अगले अंक में

प्रसंग

❁ विश्व स्वास्थ्य दिवस ❁

❑ 7 अप्रैल ❑

सुंदर भविष्य के सबल कारक

❁ समणी मल्लिप्रज्ञा ❁

हर व्यक्ति शांति चाहता है, स्वस्थ रहना चाहता है तथा चिंतामुक्त (समाधि में) रहना चाहता है। शांति, स्वास्थ्य और समाधि के बाधक तत्त्वों का यदि परिहार किया जाए तो व्यक्ति अमन-चैन से जी सकता है। साधक सूत्रों को अपनाकर सम्यक् जीवनशैली द्वारा परिवारगत और समाजगत शांति प्राप्त की जा सकती है। चिंतामुक्त रहने के लिए स्वस्थ और समाधिपूर्ण जीवन योगभूत हो सकता है।

स्वस्थ और आनंदमय जीवन के लिए यदि सामान्य-सी बातों की ओर ध्यान दे दिया जाए, तो काफी लाभ हो सकता है। कुछ बातें ऐसी हैं जो साधारण मानी जाती हैं, पर उनका वर्जन आवश्यक है। जैसे— जल्दी-जल्दी भोजन न करें। चबा-चबाकर खाने से जहां चेहरे की चमक बनी रहेगी और मांसपेशियों की नैसर्गिक मालिश होगी, वहीं पाचन क्रिया भी अच्छी रहेगी। हमारे शरीर, मन एवं भावों पर भी इसका सकारात्मक असर होगा। जैव-रासायनिक प्रक्रिया सम्यक् होगी और चयापचय संतुलित होगा। कब्ज नहीं रहेगी और पेट हलका व वायु-विकारमुक्त रहेगा। इसी तरह बार-बार खाने से परहेज करें। दिन में कई बार खाना, खान-पान की ज्यादा वस्तुएं एक साथ लेना तथा अधिक मात्रा में खाना भी बीमारी को बुलाना है। भोजन से न केवल शरीर ही प्रभावित होता है, हमारे मन के भाव, हमारा स्वभाव तथा व्यवहार भी प्रभावित होते हैं।

> *“धैर्य के अभाव में छोटी-छोटी बातों पर व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है। इससे तन, मन तथा व्यवहार की सम-स्थिति बिगड़ती है और हमारा आत्म-प्रदेश कलुषित होता है। मानसिक समस्याएं भी इसी से बढ़ती हैं। मनोदैहिक बीमारियां— घबराहट, बहानेबाजी, संभ्रम, शंकालुपन आदि मनोदशाएं व्यक्ति को परेशान करती हैं। अतः ‘क्षणे रुष्टे; क्षणे तुष्टे’ की मनोवृत्ति से बचना चाहिए। इससे तुच्छ मनोवृत्ति का आभास होता है और शारीरिक तथा मानसिक असमाधि का सामना करना पड़ता है। इससे न तो व्यक्ति स्वयं सुख से रह पाता है और न ही उसके सहवर्ती शांति से रह पाते हैं। इससे सामुदायिक जीवन भी प्रभावित होता है तथा व्यक्तिगत जीवन तो भारभूत बनता ही है।”*

संतुलित भोजन से संतुलित जैव-रसायनों का निर्माण होता है और उससे समूचा जीवन व्यवस्थित रह सकता है। पाचनक्रिया, शौच, नींद और जागरण—सभी समय-बद्ध होने चाहिए। इससे हमारी जीवन शैली स्वस्थ एवं शांत हो सकेगी। शांतमना व्यक्ति ही परिवार में, समाज में शांति बनाए रख सकता है। अतः पारिवारिक प्रसन्नता और समाजगत सौहार्दता में भी भोजन-विवेक सहयोगी सिद्ध हो सकता है।

हमारा व्यवहार और आचरण भी भोजन से संतुलित रह सकता है। हिंसा-अहिंसा, अशांति-शांति, अहंकार-शालीनता, क्रोध-क्षमा, व्यग्रता-एकाग्रता, चंचलता-स्थिरता आदि सभी मनोदशाएं आहार से प्रभावित होती हैं। बोलने की त्वरा का भी हमारे मन-मस्तिष्क पर असर पड़ता है। अपेक्षित विराम के साथ बोलने से दिमाग, मन और वाणी का समन्वय बना रहता है। बोली में संबद्धता रहती है। श्रोता को भी सुनने-समझने में सहजता-सरलता रहती है और सुनना भी अच्छा लगता है। इससे शक्ति का संतुलन और बचाव भी होता है। सम्यक् संभाषण से विषय का प्रतिपादन भी व्यवस्थित होता है और वक्तव्य भी प्रभावी बनता है। वक्ता के कंठ को भी अपेक्षानुसार विश्राम मिलता है। उसकी धातुएं सम रहती हैं और पित्त का प्रकोप नहीं होता। बेचैनी और थकान नहीं होती, स्वरभेद नहीं होता। आभामंडल भी पवित्र रहता है और दिमाग शीतल-सम रहता है।

जब दो व्यक्ति साथ-साथ रहते हैं, तो उनमें से एक बड़ा हो सकता है और दूसरा छोटा। जब बड़ा किसी प्रसंग में छोटे को सचेत करे, कोई त्रुटि बताए और छोटा यदि विनम्रता से उसे स्वीकार करले तो शांत-सहवास रह सकता है। दो-टूक या तत्काल जवाब से स्थिति कई बार तनावपूर्ण बन जाती है और आवेश में बोलने से तो विवेक रह नहीं पाता। अतः बहुत से प्रसंगों पर यथा अवसर बाद में अपना पक्ष प्रस्तुत किया जाए तो सामुदायिक शांति और स्वास्थ्य कायम रह सकता है।

इसी प्रकार अधिक बोलना भी स्वयं की शालीनता को कम करना माना जाता है। जोर-जोर से चिल्लाकर बोलने से मस्तिष्कीय क्षमता कम होती है, चिंतन की स्फुरणा भी नहीं होती है और बोलने का विवेक न रहने से श्रोता के मन में भी अप्रीति पैदा होती है। यदि समूह में बात हो रही है, तो समूह के अन्य व्यक्ति भी उत्तेजित हो सकते हैं। ध्वनि-प्रदूषण से तनाव, चिड़चिड़ापन भी बढ़ता है। नतीजतन सिरदर्द जैसे हालात बन जाते हैं। ऐसा करने वालों की बात पर ध्यान भी नहीं दिया जाता और उपेक्षा भी बढ़ती है। कई बार तो ऐसे लोग असभ्य तक ठहरा दिए जाते हैं।

किसी की बीमार अवस्था में या कोई व्यक्ति गंभीर कार्य में संलग्न हो, तब भी तेज स्वरों में बोलना अरुचिकर हो जाता है। घर का कोई सदस्य ध्यान कर रहा हो अथवा अपने कार्य में मग्न हो—उस समय कोई एक व्यक्ति यदि ज्यादा बोलता है या चिल्लाकर बोलता है—तो सबकी शांति, एकाग्रता भंग होती है। इससे पूरे वातावरण में अशुभ एवं नकारात्मक परमाणु व्याप्त हो जाते हैं। तन, मन और वाणी के अशुभ होने से व्याधिग्रस्तता की स्थिति पैदा हो जाती है।

स्थान, समय और स्थिति को भी देख कर बोलना चाहिए। यदि कोई सभा जुड़ी हो, धर्मोपदेश चल रहा हो—तब बीच में जोर से नहीं बोलना चाहिए। असभ्य और अशिष्ट शब्दों का प्रयोग तो कदाचित नहीं करना चाहिए। असामयिक शब्द-प्रयोग से भी बचना चाहिए। आपसी फूट डालने जैसे शब्दों का भी प्रयोग नहीं होना चाहिए। इससे पीढ़ियों का स्नेह टूटता है। आपसी संदेह से मानसिक दूरियां बढ़ती हैं। मन जब दुखी-क्लांत होगा, तब शांति और स्वास्थ्य कैसे रह सकते हैं? अतः स्वस्थ जीवन शैली के लिए स्वस्थ व संतुलित वाणी और कथन जरूरी है।

स्व-प्रशंसा और पर-दोष-दर्शन व प्रकाशन मानवीय जीवन की दूषित मनोस्थिति है। इस पर अंकुश लगना आवश्यक है। किसी का दोष दिखाई दे, तो वह एकांत में, मधुर स्वर से उसे ही बताना चाहिए—जिसका दोष है। इससे उस व्यक्ति में हीन-भावना का जन्म नहीं होगा। अपनों से बड़ों के प्रमाद को बताते समय तो अधिक सावधानी व शालीनता की जरूरत है। सात्त्विक स्थिति तो यह है कि बड़ों की छोटी-छोटी त्रुटियों या असावधानियों को नजरअंदाज ही करना चाहिए, यदि वे नुकसानकारक न हों। यदि हम अपने विकास के अवसर सुरक्षित रखना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि उन पर किसी भी तरह से तुषारापात न हो, तो अपने से उच्च पदस्थ, ज्येष्ठ तथा वरिष्ठ व्यक्तियों की कही बातों का अन्यथा नहीं लेना चाहिए। अलबत्ता यदि कुछ अनुचित ही कहा जा रहा हो, तो भी हमारे कहने का ढंग संतुलित और विवेकपूर्ण होना जरूरी है। विवेकशीलता और शालीनता विनम्रभाव से ही आती है और ऐसे ही भाव से निवेदन करने तथा बड़ों को

बहुमान देने से छोटे और अधीनस्थ की भलाई भी निहित है। इस तथ्य को सदैव सामने रखना चाहिए।

यदि हम परनिंदा से परहेज करने लगें, तो यह एक बड़ी उपलब्धि और सकारात्मक कदम होगा। सार्वजनिक रूप से किसी की नाकामी को कहना अथवा निंदा करना दूसरे पक्ष की इज्जत को बट्टा लगाने जैसा है। परनिंदा एक-दूसरे के प्रति अविश्वास और घृणा का भाव भी पैदा करता है। इससे वैर-विरोध बढ़ता है और व्यक्ति की आत्मा बुरे कर्मों से बोझिल हो जाती है। इससे व्यक्ति का आभामंडल भी मलिन होता है, उसकी प्रतीति भी कम हो जाती है और मान-सम्मान भी घटता है। जिसकी चुगली या निंदा की जाती है, वह भी दूसरों की नजर में गिरता है। उसे दुख भी होता है। निंदक और निंदा के पात्र—दोनों का ही अनिष्ट होता है। इससे व्यक्तित्व भी धूमिल होता है।

नकारात्मक दृष्टिकोण से तन, मन और स्वभाव—सभी स्तरों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप अशांति और बीमारियां बढ़ती हैं और परिपार्श्व का वातावरण भी विषाक्त होता है। अतः स्वहित और परहित—दोनों ही दृष्टिकोणों से परनिंदा से परहेज करना अत्यंत आवश्यक है। हर एक व्यक्ति को अपने जीवन में संशयों और शंकाओं से बचना चाहिए। जहां संदेह हो, बात की प्रामाणिकता का ज्ञान न हो, तो उसके बारे में निश्चयकारी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जानकारी के अभाव में निश्चयात्मक कथन से व्यवहार और व्यक्तित्व—दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत संभावना, शायद आदि सापेक्ष शब्दों के प्रयोग से वचन और व्यवहार—दोनों की प्रतिकूल स्थिति से बचा जा सकता है तथा परस्परता में भी मधुरता बनी रह सकती है। कुछ व्यक्तियों की यह कमजोरी होती है कि वे शांत वातावरण को भी अपने अशालीन शब्दों या व्यवहार से उत्तेजित कर डालते हैं। व्यक्तिगत आक्षेप और आरोप-प्रत्यारोप के द्वारा सहज वातावरण में तनाव पैदा हो जाता है और व्यक्ति स्वयं भी बेचैनी महसूस करता है। इसके रहते व्यक्ति, परिवार और समाज अशांत तथा मानसिक संक्लेश के शिकार हो जाते हैं। इसलिए उपशांत स्थिति को बनाए रखने का सुविचारित प्रयत्न करना चाहिए। इससे शांति, स्वास्थ्य तथा चित्त-समाधि संभव हो सकती है। सामुदायिक स्वास्थ्य के लिए भी उपशांत वातावरण ही अपेक्षित है।

वाणी के असंयम से बड़ों का अपमान करना पारिवारिकता का स्खलन है। इससे सामाजिक समरसता भी कठिन हो जाती है और सामाजिक मूल्यों का संरक्षण भी नहीं हो सकता। वर्तमान तथा भावी पीढ़ी में संस्कारों का ह्रास भी होता है। स्नेह, सौहार्द तथा सज्जनता तो प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए। यही हमारी संस्कृति है। माता-पिता, गुरुजनों और अग्रजों का दिल दुखाना कष्टदायी होता है। उनका अपमान करना और उनके उपकारों को भूलना—अमानवीय तो है ही, अधर्म भी है। इससे बचना हमारा फर्ज है, धर्म है। सुंदर भविष्य के निर्माण में ये सभी कारक तत्त्व हैं।

इसी प्रकार निरंतर क्रोध करना परिवार और समाज की शांति को भंग करना है। इसी से वातावरण दूषित होता है और शरीर में विष की बढ़ोतरी होती है। सिरदर्द 'एसिडिटी' और रक्तचाप बढ़ना तथा पाचन-क्रिया असंतुलित होना—इसी का परिणाम है। इससे मस्तिष्कीय सम-स्थिति विकृत होती है। तन, मन और भावों तथा संवेगों पर प्रतिकूल असर पड़ता है तथा पारस्परिक व्यवहार भी अच्छा नहीं रह पाता है। दीर्घश्वास प्रेक्षा तथा ललाट के मध्य भाग पर अवस्थित ज्योतिकेंद्र पर श्वेत-चंद्रमा का ध्यान करने से क्रोध पर नियंत्रण पाया जा सकता है। इससे व्यक्ति एवं परिवार—दोनों स्तरों पर शांति एवं स्वास्थ्य कायम रखा जा सकता है। भावात्मक बुद्धि का विकास मन और मस्तिष्क के शांत व शीतल रहने से ही संभव है।

धैर्य के अभाव में छोटी-छोटी बातों पर व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है। इससे तन, मन तथा व्यवहार की सम-स्थिति बिगड़ती है और हमारा आत्म-प्रदेश कलुषित होता है। मानसिक समस्याएं भी इसी से बढ़ती हैं। मनोदैहिक बीमारियां—घबराहट, बहानेबाजी, संभ्रम, शंकालुपन आदि मनोदशाएं व्यक्ति को परेशान करती हैं। अतः 'क्षणे रुष्टे; क्षणे तुष्टे' की मनोवृत्ति से बचना चाहिए। इससे तुच्छ मनोवृत्ति का आभास होता है और शारीरिक तथा मानसिक असमाधि का सामना करना

पड़ता है। इससे न तो व्यक्ति स्वयं सुख से रह पाता है और न ही उसके सहवर्ती शांति से रह पाते हैं। इससे सामुदायिक जीवन भी प्रभावित होता है तथा व्यक्तिगत जीवन तो भारभूत बनता ही है। बात-बात में उत्तेजित होने से दोनों ओर के—स्वयं के भी और सामने वाले के भी—जैव रसायन असंतुलित हो जाते हैं। इससे कोई भी काम सम्यक् रीति से नहीं हो पाता। इस मनोदशा से जो ग्रसित है, वह प्रायः दुखी ही रहता है। अतः इस मनोदशा पर नियंत्रण आरोग्य को आमंत्रण हो सकता है।

ठीक इसी तरह अति तेज गति से चलना भी शरीर के क्रियातंत्र को असंतुलित करना है। संतुलित गति से जहां सांस नहीं फूलेगा, वहीं हृदयगति भी नियमित रहेगी। इससे शक्ति का अपव्यय भी नहीं होगा।

हम जानते हैं कि देखने की क्रिया आंख से होती है। दिमाग और आंख के बीच संतुलित समन्वय नहीं रहने से स्मृति की हानि हो सकती है। आंख पर भी बुरा असर पड़ सकता है। इसके असंतुलन से चंचलता बढ़ती है और मन व्यग्र हो जाता है। जैसे दूरदर्शन (टी.वी.) पर तीव्र गति से बदलने-चलने वाले दृश्यों, विज्ञापनों को निरंतर देखने से दिमाग में तनाव आ सकता है और मन भी बेचैन हो जाता है। इससे स्वभाव और व्यवहार भी चिड़चिड़ा हो जाता है। नेत्रज्योति पर भी गलत असर पड़ता है। स्थिरता और शांति कम होने से स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता। अतः द्रुत गति से चल रहे दृश्यों को देखने से बचना हितकारी है।

यही बात अंग प्रसारण और उनके संकोचन की है। इनमें भी जल्दबाजी से बचें। तेजगति से अचानक क्रिया करने पर झटका लग सकता है, चोट भी आ सकती है। किसी अंग या मांसपेशी में दर्द हो सकता है या सूजन आ सकती है। नस खिंच सकती है और 'एयर-क्रेक' भी हो सकता है। इसलिए हाथ-पैर फैलाते समय तथा समेटते समय अनावश्यक शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। एक समय के बाद मांसपेशियां भी अकड़ जाती हैं, जबकि संतुलित फैलाव और सिकुड़न से शरीर की लय बनी रह सकती है। सावधानीपूर्वक किया जाने वाला व्यायाम ही दीर्घकाल में उपयोगी होता है।

पठन-पाठन में भी अति शीघ्रता से बचना जरूरी है। कई बार बहुत जल्दी-जल्दी पढ़ने से शब्द अथवा तथ्य छूट सकते हैं। इससे दिमाग भी भारी हो सकता है और ज्ञानात्मक शक्ति का व्यय भी ज्यादा होता है। हमारे स्मृति प्रकोष्ठ भी अति तीव्रता से बात को ग्रहण नहीं कर पाते। इससे हमारी आंख, स्वर और जिह्वा आदि इंद्रियों को भी अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है और उनमें असमय ही थकान आ जाती है। अति जल्दी पढ़ने-पढ़ाने से पाठक या विद्यार्थी को समझने-सुनने में भी दिक्कत हो सकती है और ग्रहणशीलता कम हो जाती है। अतः अति शीघ्रता से पढ़ने-पढ़ाने जैसी अतियों से बचना लाभदायी है।

हमारे आवागमन और यातायात के साधनों का स्वच्छ होना अत्यंत जरूरी है। ये विषम नहीं होना चाहिए। ये जीव-जंतुओं से रहित हों, घास-फूस रहित हों। इन पर चलने से बचना चाहिए। यही बात गंदगी वाले स्थानों पर चलने की है। ऐसे स्थानों से बीमारियां बढ़ती हैं, संक्रामक रोग हो सकते हैं। सड़क पर थूकना, जहां चाहें—वहां लघुशंका करना बीमारियों को फैलाना है। इससे बचना चाहिए। प्रदूषणरहित स्थान पर चलने से स्फूर्ति मिलती है और 'ऑक्सीजन' की पूर्ति होती है। स्वस्थ और शांत रहने के लिए इन बातों का पूरा पालन करना चाहिए। हमारे बैठने और सोने के स्थान भी साफ-सुथरे व सादगीपूर्ण होने चाहिए। अनावश्यक संसाधन नहीं होने चाहिए। साथ ही टूटे-फूटे सामान को भी पास में नहीं रखना चाहिए। कबाड़ रखने से जहां स्थान की कमी हो जाती है, वहीं गंदगी भी एकत्रित होती है। अनचाहे जीवों का जमावड़ा बढ़ता है और घर का वातावरण नकारात्मक होता है। इससे तनाव भी बढ़ता है और मानसिक संताप पैदा होता है। इसी तरह 'फैशन' के बहाव में रहने से मन विगलित होता है। इससे तन और मन, दोनों को आराम नहीं मिल पाता। अतः इनसे बचना चाहिए।

हम जानते हैं कि प्रत्येक जीव में चेतना है। यह पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि—सभी में जीवन है। प्राणी-मात्र को सम्मानपूर्वक जीने का मौलिक

शेष पृष्ठ 53 पर

आचार-व्यवहार के प्रति दृढ़-निष्ठा, संघीय मर्यादाओं के प्रति कठोर अनुशासन और साधना के प्रति स्पष्ट प्रतिबद्धता का संदेश दिया आचार्यश्री महाश्रमणजी ने

❑

सेवा की भावना से होने वाला काम ही बनता है कर्म निर्जरा का आधार—महाश्रमणीजी

❑❑

चित्त समाधि के लिए प्रयत्नशील रहना परम कर्तव्य—आचार्यश्री महाश्रमणजी

❑❑❑

तेरापंथ धर्मसंघ का 147वां मर्यादा महोत्सव राजलदेसर (चूरू जिला) के युवा भारती स्टेडियम मैदान में 8, 9 और 10 फरवरी, 2011 को नए उत्साह, ओज और संकल्प के साथ संपन्न हुआ। तीन दिन के इस समारोह से पूर्व 6-7 फरवरी तथा 11 और 20 फरवरी (लाडनूं) भी इस परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण रहे। 6 और 7 फरवरी को जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के कार्यक्रम संपन्न हुए, जबकि 20 फरवरी को महासभा की ओर से लाडनूं (नागौर जिला) में **'आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय'** के नवनिर्मित भवन, **'आचार्य तुलसी महिला शिक्षा केंद्र भवन'** व **'आचार्य महाप्रज्ञ केंद्रीय शैक्षणिक भवन'** का लोकार्पण संपन्न हुआ। लाडनूं स्थित जैन विश्व भारती परिसर में संपन्न इन कार्यक्रमों का मर्यादा महोत्सव के तीन दिवसीय कार्यक्रम से सीधा संबंध तो नहीं था, पर मर्यादा महोत्सव के तुरंत बाद हुए इस बड़े कार्यक्रम पर महोत्सव की छाया स्पष्ट दृष्टिगत होती रही। 11 फरवरी को मर्यादा महोत्सव से संबद्ध अवशेष कार्यक्रम हुए। **मंत्री-मुनि मनोनयन** के वर्धापन कार्यक्रम भी संपन्न हुए।

147वां मर्यादा महोत्सव राजलदेसर में संपन्न हुआ

मर्यादा महोत्सव के तीन दिवसीय कार्यक्रम के दौरान 9 फरवरी को जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा की 97वीं वार्षिक साधारण सभा तेरापंथ भवन, राजलदेसर में संपन्न हुई। (इन सभी कार्यक्रमों की विस्तृत रिपोर्ट **जैन भारती** के इसी अंक में पृष्ठ 54 पर देखें)। इसी क्रम में 6 फरवरी को मिलन गोष्ठी व 7 फरवरी को संबोधन अलंकरण समारोह संपन्न हुआ। (विस्तृत रिपोर्ट देखें पृष्ठ 54 पर)

आचार्यश्री महाश्रमणजी के तेरापंथ धर्मसंघ के अधिष्ठाता पद पर आरूढ़ होने के बाद आया यह पहला मर्यादा महोत्सव अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण रहा। आचार्यश्री महाश्रमणजी जहां बार-बार अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का स्मरण करते रहे, वहीं साध्वी समाज का नेतृत्व कर रही साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी के मूल्यवान अवदानों की भी याद दिलाते रहे और यह बताते रहे कि साध्वी समाज की जैसी सार-सम्हाल उनके द्वारा हो रही है, वह उल्लेखनीय है। साथ ही वे तेरापंथ के विधान और मर्यादा का स्मरण भी बराबर करते रहे और लगातार यह बताते रहे कि तेरापंथ के विधान के अनुसार एक आचार्य की मौलिक परंपरा के बल पर ही यह संगठन अडिग खड़ा है। उन्होंने जहां कठोर अनुशासन और संघीय मर्यादाओं के प्रति प्रतिक्षण सजग रहने का संकेत किया, वहीं अपने से रत्नाधिक मुनियों के लिए 'तिक्खुतो' से वंदना नहीं करने का इंगित भी विनम्रतापूर्वक दिया। उन्होंने कहा कि 'पंचपद की वंदना' में भी मेरा नाम न लें। वे तीसरे पद में आचार्यों को समुच्चय में वंदना करें। वे आचार्य महाश्रमण के आज्ञानुवर्ती हैं।'

आचार्यश्री महाश्रमणजी के उपर्युक्त कथन में एक ओर जहां उनकी अनुकरणीय विनम्रता की झलक मिलती है, वहीं आचार और व्यवहार के प्रति दृढ़निष्ठा, संघीय मर्यादाओं के प्रति कठोर अनुशासन और धर्मसंघ में साधना के प्रति स्पष्ट प्रतिबद्धता भी परिलक्षित होती है।

आचार्य पद पर पदारूढ़ होने के बाद आए इस पहले मर्यादा महोत्सव के तीन दिवसीय आयोजन में आचार्यश्री महाश्रमणजी की दृढ़ छवि और स्पष्टता का दिग्दर्शन लगातार होता रहा तथा युवा भारती स्टेडियम में उपस्थित विशाल जनमेदिनी उनके आभामंडल को लगातार निहारती रही।

147वां मर्यादा महोत्सव : 8 फरवरी : प्रथम दिन

राजलदेसर के युवा भारती स्टेडियम मैदान में 8 फरवरी, 2011 को **'मर्यादा महोत्सव'** के तीन दिवसीय

कार्यक्रमों का मंगल शुभारंभ महामंत्रोच्चार से हुआ। आचार्यश्री महाश्रमणजी ने पूर्ण श्रद्धा और दृढ़ता भरे आदर के साथ **'मर्यादा पत्र'** (आचार्यश्री भिक्षु द्वारा लिखे लेख-पत्र) की स्थापना की। उन्होंने आचार्यश्री भिक्षु का पावन स्मरण करते हुए महोत्सव के कार्यक्रमों की विधिवत घोषणा की। इसी क्रम में मुनि दिनेशकुमारजी ने निर्धारित जयघोषों के साथ मर्यादागीत का सस्वर संगान किया।

प्रवास व्यवस्था समिति, राजलदेसर के अध्यक्ष श्री पन्नालाल बैद ने सभी आगंतुकों का स्वागत किया।

मर्यादा महोत्सव का पहला दिन **'सेवा केंद्रों'** की नियुक्ति के लिए साधु-साध्वियों की ओर से प्रार्थना का दिवस होता है। अग्रगामी-सहगामी साध्वियों ने खड़े होकर विनत भाव से सेवा का अवसर प्रदान करने की प्रार्थना की। मुनि सुमतिकुमारजी ने साधु समाज की ओर से अभिव्यक्ति दी और सेवा का महत्त्व बताते हुए अपने विचार रखे। साथ ही उपस्थित मुनिवृंदों ने अपने-अपने स्थान पर खड़े होकर सेवा का अवसर प्रदान करने की प्रार्थना की। इसी तरह साध्वी सुमनश्रीजी ने साध्वीगणों की ओर से यही भावना प्रकट की।

आचार्यश्री महाश्रमणजी ने पहले दिन के कार्यक्रम की महत्ता बताते हुए 'अनुकंपा की चेतना' के जागरण पर बल दिया और कहा कि निर्जरा तथा कर्तव्य की भावना से की जाने वाली सेवा ही विशेष लाभ देने वाली सिद्ध होती है। इसीलिए 'मर्यादा महोत्सव' का पहला दिन सेवा भावना को समर्पित होता है। उन्होंने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का पुण्य स्मरण करते हुए श्रीडूंगरगढ़ महोत्सव को याद किया और कहा कि—'काश! आज पूज्यश्री होते तो वे घोषणा करते, पर वह काम तो अब मुझे ही करना है।'

इसी के साथ आचार्यप्रवर ने सेवा केंद्रों के चातुर्मासों की घोषणा की, जो निम्नानुसार है—

1. **लाडनूं सेवा केंद्र**—साध्वी कमलश्रीजी के संरक्षण में साध्वी जिनरेखाजी, 2. **बीदासर सेवा केंद्र**—साध्वी सुमनश्रीजी, 3. **श्रीडूंगरगढ़ सेवा केंद्र**—साध्वी अणिमाश्रीजी, 4. **राजलदेसर सेवा केंद्र**—साध्वी विनयश्रीजी (बोरावड़), 5. **गंगाशहर सेवा केंद्र**—साध्वी कंचनकुमारीजी (लाडनूं), 6. **छापर सेवा केंद्र**—शासनगौरव मुनि ताराचंदजी, मुनि सुमतिकुमारजी और 7. **जैन विश्वभारती सेवा केंद्र**—मुनि महेंद्रकुमारजी।

सेवा केंद्रों की घोषणा के साथ ही आचार्यश्री महाश्रमणजी ने गुरुदेवश्री तुलसी का स्मरण किया और 'योगक्षेम वर्ष' के दौरान एक घटना का जिक्र करते हुए बताया कि गुरुदेवश्री तुलसी ने मुझे कहा था—'श्रम और स्वावलंबन का ध्यान रखना। स्वावलंबन के संस्कार सबमें पुष्ट होते रहें।'—गुरुदेवश्री तुलसी के उक्त कथन का स्मरण कराते हुए आचार्यश्री महाश्रमणजी ने लौकिक सेवा और लोकोत्तर सेवा का उल्लेख किया और स्पष्ट किया कि लौकिक सेवा का भी समाज में बड़ा महत्त्व है। उन्होंने श्री शांतिलाल सुराणा (बीकानेर) और श्री ओमप्रकाश जैन (जयपुर) का उल्लेख करते हुए श्रावक समाज द्वारा की जाने वाली रास्ते की सेवा तथा चिकित्सा सेवा में समाज की जागरूकता का जिक्र किया तथा ऐसे कार्यों के प्रति प्रमोद भाव प्रकट किया।

इस मौके पर मुनि कुमारश्रमणजी के 21वें दीक्षा दिवस का आचार्यप्रवर ने उल्लेख किया और कहा कि—'मुनि कुमारश्रमणजी बहुत विनीत और प्रबुद्ध साधु हैं। इनमें काम के प्रति सदैव निष्ठा का भाव रहता है।'—इस भावना के साथ ही आचार्यश्री ने कई श्रावक-श्राविकाओं की श्रद्धा-भक्ति का भी उल्लेख किया और उन्हें विशेष संबोधनों से संबोधित किया।

इसी क्रम में साध्वी संघमित्राजी ने सेवा के संदर्भ में अपने विचार रखे। मुनि अक्षयप्रकाशजी ने 'तेरापंथ की मर्यादाएं और प्रबंधन' विषय पर वक्तव्य दिया। 'मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी ने नव प्रकाशित पुस्तक 'महाप्रज्ञ ने कहा (भाग-41)' आचार्यवर को अर्पित की। उल्लेखनीय है कि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के प्रवचनों पर आधारित इन संकलनों का संपादन मुख्य नियोजिकाजी और मुनि जयकुमारजी द्वारा किया जा रहा है। इसी क्रम में साध्वी सुमतिप्रभाजी ने आचार्यश्री महाश्रमणजी द्वारा रचित कृति 'क्या कहता है जैन वाङ्मय' व 'दुख मुक्ति का मार्ग' आचार्यवर को उपहृत की। साध्वी सुमतिप्रभाजी ने स्वयं द्वारा लिखित पुस्तक 'आचार्य महाश्रमण: जीवन परिचय' भी आचार्यवर को भेंट की। साध्वी सुमतिप्रभाजी की प्रतिभा और श्रमनिष्ठा का उल्लेख करते हुए आचार्यवर ने कहा कि—'इनका विकास निरंतर होता रहे।'

साध्वी अणिमाश्रीजी ने अपनी नव प्रकाशित पुस्तक 'जीवन का आनंद' आचार्यवर को अर्पित की। आचार्यवर ने साध्वी अणिमाश्रीजी को प्रबुद्ध साध्वी बताते हुए कहा कि—'सेवा और साहित्यिक क्षेत्र में ये अपना विकास करें। इस मौके पर जैन विश्वभारती के उपमंत्री श्री विजयसिंह

चोरड़िया ने नव प्रकाशित 'जय तिथि पत्रक' भेंट किया। मित्र परिषद, कोलकाता के अध्यक्ष श्री प्रमोद नाहटा ने 'तिथि दर्पण' भेंट किया। श्री कमलेश भादाणी ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के गीत 'चैत्य पुरुष जग जाए' की सीडी भेंट की। श्री नोरतनमल बच्छावत ने भी 'ॐ श्री महाप्रज्ञ गुरुवे नमः' की सीडी भेंट की। इस सीडी में दर्ज गीत श्री कमल सेठिया ने गाए हैं। इस मौके पर आचार्यश्री महाश्रमणजी के सरदारशहर प्रवास का सचित्र दस्तावेज का एक 'बंच' सर्वश्री सुमति गोठी, राजकरण सिरोहिया और रतन दूगड़ ने भेंट किया।

पहले दिन के इस कार्यक्रम में **'श्रेष्ठ सभा'** व **'श्रेष्ठ ज्ञानशाला'** पुरस्कार के संदर्भ में जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया ने जानकारी दी। इस वर्ष का श्रेष्ठ सभा पुरस्कार उत्तर-हावड़ा को प्रदान किया गया। स्व. झूमरमलजी बच्छावत परिवार के सौजन्य से यह पुरस्कार दिया जाता है। श्रेष्ठ ज्ञानशाला पुरस्कार उधना (सूरत) ज्ञानशाला को, उत्तम ज्ञानशाला पुरस्कार पल्लावरम (चैन्नई) व सरदारशहर ज्ञानशाला को प्रदान किया गया। यह पुरस्कार शासनसेवी श्री विमलकुमार नाहटा के सौजन्य से दिया जाता है। इस अवसर पर श्रीमती मंजूदेवी दक, श्रीमती पुष्पा कुंडलिया (कोलकाता), सुनीता दूगड़ (दिल्ली), श्रीमती मीना धींग (मुंबई) तथा श्रीमती सुशीला वडाला को 'श्रेष्ठ प्रशिक्षक' के रूप में तथा कुणाल मूथा (कोलकाता), दीक्षा नोलखा व अक्षय संकलेचा (अहमदाबाद), अंकित कोठारी (पेटलावद), सृष्टि बाफना (कोलकाता) व पूजा मालू (गुलाबबाग) को 'श्रेष्ठ ज्ञानार्थी' के रूप में सम्मानित किया गया। महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया, प्रधान ट्रस्टी श्री राजेश बच्छावत सहित महासभा पदाधिकारियों व पुरस्कारों के प्रायोजकों ने ये सभी सम्मान व पुरस्कार संबद्ध जनों को अर्पित किए। इस पुरस्कार कार्यक्रम का संचालन महासभा के महामंत्री श्री भंवरलाल सिंघी ने किया। आचार्यश्री महाश्रमणजी ने पुरस्कार प्राप्तकर्ताओं के प्रति अपनी प्रमोद भावनाएं प्रकट करते हुए कहा कि—'आप इसे एक प्रेरणा के रूप में मानें तथा इससे आपके कार्य का संकल्प और अधिक पुष्ट बने—यही भावना है।'

मर्यादा महोत्सव के प्रथम दिवस पर साध्वी- प्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने अपने प्रेरक उद्‌बोधन में सेवा को कर्म निर्जरा का आधार बताया और कहा कि—'सेवा निष्काम भाव से होनी चाहिए।'—सेवा के चार प्रकार बताते हुए महाश्रमणीजी ने कहा—'तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्यश्री भिक्षु के समय से ही सेवा का क्रम निरंतर चल रहा है।'—उन्होंने भावना व्यक्त की कि संघ में इसकी महत्ता सदा बनी रहेगी। इसी क्रम में साध्वी समाज की ओर से की जा रही सेवाओं का उल्लेख करते हुए महाश्रमणीजी ने कहा कि सेवा की भावना से होने वाला छोटे से छोटा काम भी कर्म निर्जरा का आधार बनता है और संघ की प्रभावना होती है।

मर्यादा महोत्सव के कार्यक्रम के पहले दिन का संचालन मुनि मोहजीतकुमारजी ने सफलतापूर्वक किया।

मर्यादा महोत्सव : दूसरा दिन : 9 फरवरी

मर्यादा महोत्सव के दूसरे दिन को **'अभिवंदना दिवस'** के रूप में मनाया गया। आचार्यश्री महाश्रमणजी के पदाभिषेक दिवस के रूप में यह अवसर बहिर्विहारी साधु-साध्वियों के लिए विशेष उल्लेखनीय रहा। इन साधु-साध्वियों ने रतनगढ़ प्रवास के दौरान ही यह प्रार्थना कर दी थी कि मर्यादा महोत्सव का दूसरा दिन 'अभिवंदना दिवस' के रूप में मनाया जाए तो बहिर्विहारी साधु-साध्वियों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर उपलब्ध हो सकेगा। आचार्यप्रवर ने इसे स्वीकृति प्रदान कर दी और सहज ही यह दिन साधु-साध्वियों की श्रद्धा, उल्लास और भावना की अभिव्यक्ति का दिवस बन गया।

दूसरे दिन का शुभारंभ भी आचार्यप्रवर के महामंत्रोच्चार से हुआ। अभिवंदना समारोह में मुनि उदितकुमारजी, मुनि मुकुलकुमारजी, मुनि दर्शनकुमारजी, मुनि धन्यकुमारजी, मुनि नरेशकुमारजी, मुनि दिनकरजी, मुनि अभयकुमारजी, मुनि विकासकुमारजी, मुनि देवेंद्रकुमारजी, मुनि पदमकुमारजी, मुनि अशोककुमारजी, मुनि अनंतकुमारजी आदि ने कविता, मुक्तक, गीत और वक्तव्य के माध्यम से अपनी भावनाएं व्यक्त कीं और गुरु दृष्टि के अनुरूप चलने का संकल्प प्रकट किया। मुनि विजयकुमारजी व बहिर्विहारी संतों ने समूह गीत प्रस्तुत किया। शासनश्री मुनि रविंद्रकुमारजी ने अपने भावपूर्ण विचार व्यक्त किए और अपनी यात्रा के संस्मरणों का एक ग्रंथ आचार्यवर को भेंट किया। गंगाशहर क्षेत्र से दीक्षित मुनिवृंदों ने शासनश्री मुनि बालचंदजी के नेतृत्व में एक भावपूर्ण गीत सस्वर प्रस्तुत किया। इसी क्रम में साध्वी संकल्पश्रीजी, साध्वी संघमित्राजी, साध्वी अणिमाश्रीजी, साध्वी मधुस्मिताजी आदि ने आचार्यवर की अभिवंदना में अपने उद्‌गार प्रकट किए। शासनगौरव साध्वी राजीमतीजी सहित सभी साध्वियों ने संकल्पपूर्वक अपनी रचनात्मक भावनाएं प्रकट कीं।

इसी क्रम में साध्वी यशोधराजी ने अभिनंदन पत्र का वाचन किया और साध्वी राजकुमारीजी 'नोहर' ने यह अभिनंदन पत्र आचार्यवर को समर्पित किया। साध्वी राजीमतीजी ने साध्वियों के द्वारा बनाई गई एक माला आचार्यवर के गले में पहनाने के लिए जब मुनि सुमेरमलजी 'लाडनूं' से अनुरोध किया और मुनिवर ने जब यह माला आचार्यवर के गले में पहनाई तो राजलदेसर का युवा भारती स्टेडियम उल्लास और आनंद में डूब गया। उपस्थित जनमेदिनी ने 'ॐ अर्हम' और 'जय-विजय' के घोष से समूचे परिसर को गुंजायमान कर दिया। साध्वीवृंद ने पंचाचार की प्रतिष्ठा में अपनी शक्ति और क्षमता को नियोजित करने का संकल्प प्रकट किया। समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने भी अपनी भावनाएं व्यक्त करते हुए 'इसिभासियं' ग्रंथ आचार्यवर को भेंट किया। इस अवसर पर बाल साध्वियों ने अपने भावपूर्ण गीत से आचार्यवर की अभ्यर्थना की। समणीवृंद और मुमुक्षुवृंद ने भी एक सुमधुर गीत का संगान किया। डॉ. शांता जैन ने भावपूर्ण कविता पेश की। साध्वी लावण्ययशाजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए अपनी शोधकृति 'महामंत्र की परिक्रमा' आचार्यवर को भेंट की। शासनगौरव दिवंगत मुनि मधुकरजी द्वारा रचित 'काव्यांजलि' नाम के गीत संग्रह पर मुनि जंबूकुमारजी ने अपने विचार प्रकट किए और शासनगौरव मुनि ताराचंदजी ने यह कृति आचार्यवर को भेंट की।

अभिवंदना समारोह के इसी क्रम में श्रावक समाज की ओर से महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया ने अपनी भावनाएं श्रद्धापूर्वक प्रस्तुत कीं।

इसी क्रम में पूर्वांचल के अनेक जनों ने सन् 2015 में इस क्षेत्र की यात्रा का अनुरोध आचार्यप्रवर से किया। संघसेवी श्री कमल दूगड़ (कोलकाता), श्री विजयसिंह डागा (गुवाहाटी) और नेपाल-बिहार सभा के अध्यक्ष श्री हंसराज बेताला ने इन क्षेत्रों की यात्रा का अनुरोध किया। श्री झंवरीमल बेगानी ने संकल्प पत्र भेंट किया।

इस अभिनव अभिवंदना समारोह का संचालन मुनि मोहजीतकुमारजी ने किया।

मर्यादा महोत्सव

तीसरा एवं अंतिम दिन : 10 फरवरी

तीन दिवसीय मर्यादा महोत्सव का मुख्य कार्यक्रम (माघ शुक्ला सप्तमी : माघ महोत्सव) 10 फरवरी को संपन्न हुआ। आचार्यश्री महाश्रमणजी के उद्बोधन ने एक ओर जहां पूर्व स्मृतियों की याद दिलाई, वहीं दूसरी ओर अपनी दृढ़ संघीय निष्ठा, अनुशासनप्रियता, उदार विनम्रता और एकनिष्ठता से संपूर्ण तेरापंथ संघ को आश्वस्त किया और विश्वास पुष्ट किया कि इस संघ का शुभ भविष्य सदा सुरक्षित है।

आचार्यश्री महाश्रमणजी ने विक्रम संवत 2067 को याद करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का पुण्यस्मरण भी किया और कहा कि—'तेरापंथ धर्मसंघ का दसवां अध्याय संपन्न होने के साथ ही इसका ग्यारहवां अध्याय खुल गया है। यह सब अकस्मात हुआ। उसकी स्मृति में आज हम सभी कुछ देर के लिए 'ध्यान' करें और अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें।'—आचार्यप्रवर के निर्देश पर सभी साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविका समाज ने कुछ क्षण 'ध्यान' किया। उल्लेखनीय है कि मर्यादा महोत्सव के इस कार्यक्रम में 91 संत, 301 साध्वियां, 96 समणीगण तथा एक समण उपस्थित थे। इस प्रकार कुल 489 साधु-साध्वीगण व समण-समणीगण उपस्थित थे।

आचार्यश्री महाश्रमणजी ने सरदारशहर के घटनाक्रम का स्मरण करते हुए बताया कि तत्समय में आयोजित पदाभिषेक समारोह में जो रत्नाधिक चरित्र आत्माएं उपस्थित थीं—'मैंने उनकी चरण वंदना की थी, अपने से बड़ों का आशीर्वाद लिया था। तब अनेक रत्नाधिक मुनि वहां विराजमान नहीं थे, जो आज यहां मर्यादा महोत्सव पर उपस्थित हैं और मैं उन सबका आशीर्वाद लेना चाहता हूं। मैं बहिर्विहारी रत्नाधिक मुनियों की वंदना करना चाहता हूं।'—इसी के साथ आचार्यश्री महाश्रमणजी अपने आसन से नीचे उतरे और सभी को भावपूर्ण चरण वंदना की। धर्मसंघ के एक अधिष्ठाता आचार्य की ओर से प्रकट यह विनम्रता उपस्थित जनमेदिनी को भाव विभोर करने वाली थी। अपने से अग्रजों के प्रति ऐसा सम्मान और आदर देख कर समूचा वातावरण भाव विभोर हो उठा। ठीक इसी तरह आचार्यश्री महाश्रमणजी ने साध्वी समाज का अभिवादन भी किया। उन्होंने कहा—'जिस तरह मैंने संतों की चरण वंदना की है, उसी तरह मैं आप सभी से भी शुभाशीष की कामना करता हूं।'

आचार्यश्री की यह विनम्रता नयनाभिराम तो थी ही, उन लोगों के लिए अनुकरणीय भी थी जो अपने से अग्रजों के प्रति आदर और सत्कार का भाव मन में संजोए रखते हैं। अपने युवाचार्य काल का स्मरण करते हुए उन्होंने कहा

कि—'आज गुरुदेवश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का मंगल आशीर्वाद हमारे साथ है। उनका साया प्रत्यक्षतः भले उठ गया हो, परोक्षतः आज भी महसूस किया जा सकता है।'

उन्होंने कहा—'मेरे सामने तेरापंथ संघ है, गौरव-शाली भिक्षु शासन है और मैं उसके लिए समर्पित हूं। मैं सभी साधु-साध्वियों व समण श्रेणी की **'चित्त-समाधि'** के लिए प्रयत्नशील रहूं—यह मेरा परम और प्रथम कर्तव्य है। वैसे तो तेरापंथ संघ के अनेक कार्यक्रम हैं, पर सकल संघ की 'चित्त समाधि' मुख्य बात है और मैं इसके लिए प्रयत्नशील रहूं—यह मेरा संकल्प है। मैं चाहता हूं कि हमारे धर्मसंघ में आत्म-निष्ठा का विकास होता रहे। हमारा अभिनिष्क्रमण आत्मोदय के लिए है और यह भावना सदैव पुष्ट बनी रहे।'—आचार्यश्री महाश्रमणजी ने कहा कि—'मैं संघ का और संघ मेरा, यह आत्मीय भाव सभी में बना रहना चाहिए। गुरु आज्ञा के प्रति समर्पण, आचार-निष्ठा और श्रद्धा का भाव इधर-उधर रखने की चीज नहीं, इसे तो सिर-आंखों पर रखना है।' उन्होंने कहा कि—'हमारे संघ की जो मौलिक मर्यादाएं हैं, उनके प्रति हमारी निष्ठा बराबर बनी रहे।'

इसी क्रम में आचार्यश्री ने तेरापंथ की मर्यादाओं का स्मरण दिलाया और कहा कि—'जो मुख्य मर्यादा है, वह यह कि यह धर्मसंघ एक आचार्य की आज्ञा में चले, कोई अपना शिष्य-शिष्याएं न बनाए। किसी का व्यक्तिगत कुछ नहीं, सबकुछ गुरु का है। यहां पर साध्वीप्रमुखाजी विराजमान हैं, मेरे से रत्नाधिक मुनि भी बहुत हैं। मैं उनके लिए अपना 'शिष्य' शब्द का प्रयोग कैसे करूं? रत्नाधिक मुनि सौभाग्य से मिलते हैं, स्थूल भाषा में तो वे शिष्य ही हैं। मैंने अपनी परंपरा को भी जाना-समझा है तथा चिंतन-मनन के बाद ही यह निर्णय लिया है कि जो आचार्य से रत्नाधिक मुनि हैं, वे 'तिक्खुतो' से वंदना करने का प्रयास न करें। जो रत्नाधिक मुनि हैं—उनके लिए 'आज्ञानुवर्ती' शब्द का प्रयोग हो। वे आचार्य महाश्रमण के आज्ञानुवर्ती हैं।'

आचार्यश्री महाश्रमणजी ने तेरापंथ की मौलिक मर्यादाओं का स्मरण कराते हुए कहा कि—'तेरापंथ का संगठन इन्हीं मर्यादाओं पर टिका है। ये मर्यादाएं हमारे महास्तंभ हैं।'—उन्होंने कहा कि—'तेरापंथ के विकास के अनेक आयाम हैं और अपेक्षानुसार उन पर ध्यान देना ही चाहिए, किंतु सबसे अधिक जरूरी साधना का विकास है। साधना के दो रूप हैं—एक है—**'कषाय मंदता की साधना'** और दूसरा है—**'वांछित आचार-निष्ठता।'** मैं इनके लिए सदैव प्रयत्नशील रहूंगा। हमारे धर्मसंघ की अनेक गतिविधियां हैं और हमें उन पर भी ध्यान देना है। कुछ गतिविधियां संप्रदाय से सीधी जुड़ी हैं और कुछ असांप्रदायिक व व्यापक परिप्रेक्ष्य लिए हुए हैं। हमें इन सभी को परिपुष्ट बनाए रखना है।'

आचार्यश्री महाश्रमणजी ने ज्ञानशाला, जैन विद्या परीक्षा, उपासक श्रेणी सहित जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, जैन विश्वभारती संस्थान का स्मरण करते हुए इनकी रीति-नीति, इनकी पवित्रता और इनकी सक्रियता पर बल दिया। इन सभी पर आचार्यप्रवर ने व्यापक दृष्टिपात किया और चाहा कि ये सभी प्रवृत्तियां परिपुष्ट बनें।

इसी क्रम में जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा, सभी स्थानीय सभाएं, तेरापंथ युवक परिषद और महिला मंडल का जिक्र भी किया और चाहा कि धर्मसंघ से जुड़ी इन संस्थाओं को अपनी पवित्रता और शालीनता बनाए रखना है। 'तेरापंथ प्रोफेशनल फोरम' के प्रति अपनी शुभाकांक्षा प्रकट करते हुए कहा कि—'इसका विकास हो रहा है और यह विकास काफी संतोषप्रद है। इसके माध्यम से बौद्धिक संभावनाओं को तलाशा जा सकता है।'—इस 'फोरम' और संघीय संस्थाओं में समन्वय तथा आदान-प्रदान की अपेक्षा उन्होंने की।

आचार्यश्री महाश्रमणजी ने अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन-विज्ञान, अहिंसा प्रशिक्षण और अहिंसा समवाय की चर्चा करते हुए यह अपेक्षा की कि स्थानीय सभाओं द्वारा इनको आलंबन मिलना चाहिए। उन्होंने अणुव्रत समितियों से सभाओं का सहयोग लेने की अपेक्षा की और स्थानीय सभाओं का भी आह्वान किया कि वे इन प्रवृत्तियों को नैतिक व भावनात्मक आलंबन दें।

मर्यादा महोत्सव के दौरान हुई चिंतन गोष्ठियों का जिक्र करते हुए आचार्यश्री महाश्रमणजी ने संपूर्ण मानव समाज सहित साधु-साध्वियों में संयम और साधना के विकास के प्रति अपनी अपेक्षाएं प्रकट कीं और अनेक प्रसंगों का खुलासा किया। उन्होंने भोजन व खान-पान में काम में ली जाने वाली वस्तुओं के प्रति संयम बरतने की आकांक्षा प्रकट की, वहीं कार्यकर्ताओं के निर्माण में भी सजग रहने की जरूरत बताई।

आचार्यश्री के इस आह्वान पर अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने **'जमीकंद'** के प्रयोग का प्रत्याख्यान किया।

तेरापंथ के नाम से बनने वाले भवनों, लगने वाले शिलालेखों और लिए जाने वाले चित्रों (फोटोग्राफ) आदि के प्रति निर्धारित विधियों की ओर सजग रहने का संकेत भी आचार्यवर ने दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि—'कहीं-कहीं अतिवाद देखने में आता है। इस ओर विवेक रखने की जरूरत है।' उन्होंने श्रावक समाज से **बारह व्रतों** के प्रति भी जागरूक रहने का आह्वान किया और आगामी वर्ष के लिए **'श्रावक-संबोध'** पर ध्यान दिए जाने की ओर संकेत किया। उल्लेखनीय है कि 'श्रावक संबोध' गुरुदेवश्री तुलसी द्वारा रचित ऐसा ग्रंथ है, जिसके श्रवण-मनन से श्रावकत्व में निखार आ सकता है।

आचार्यश्री ने **नशामुक्ति** के लिए भी श्रावक समाज को सक्रिय होने और नशामुक्ति का अभियान चलाने का आह्वान किया।

सरदारशहर में गठित बहुश्रुत परिषद की पृष्ठभूमि पर रोशनी डालते हुए आचार्यश्री ने इस परिषद के एक सदस्य दिवंगत मुनि दुलहराजजी के स्थान पर मुनि महेंद्रकुमारजी को मनोनीत करने की घोषणा की।

147वें मर्यादा महोत्सव की एक महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय उपलब्धि **'मंत्री पद'** पर मुनि सुमेरमलजी 'लाडनूं' को आरूढ़ करने की रही। अपने दीक्षा प्रदाता मुनिश्री सुमेरमलजी 'लाडनूं' को 'मंत्रीमुनि' के रूप में आरूढ़ करने की घोषणा के साथ ही संपूर्ण जनसमुदाय ने 'ॐ अर्हम' की ध्वनि से युवा भारती स्टेडियम मैदान को गुंजायमान कर डाला। आचार्यश्री ने मुनि सुमेरमलजी 'लाडनूं' की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए अपनी बाल मुनि काल की घटनाओं का स्मरण किया और कहा कि—'मैं आपके प्रति बहुत ही सम्मान का भाव अपने मन में रखता हूं। मैंने मुनिश्री की विशेषताओं को जाना-समझा है, उसका आकलन किया है और आज मैं उनको 'मंत्रीमुनि' के रूप में आरूढ़ करना चाहता हूं। आज आपका 70वां दीक्षा दिवस है और सहज ही यह एक अवसर मिला है।'—इसी के साथ आचार्यश्री ने **'मंत्रीमुनि मनोनयन पत्र'** का वाचन किया। मनोनयन पत्र इस प्रकार है—**'शासन भक्ति, गंभीरता, वैदुष्य आदि विशेषताओं तथा वर्तमान आचार्य के दीक्षा-प्रदाता होने की गरिमापूर्ण स्थिति को ध्यान में रखते हुए मैं श्रद्धेय मुनिश्री सुमेरमलजी स्वामी (लाडनूं) को 'मंत्रीमुनि' के गौरवपूर्ण और दायित्वपूर्ण स्थान पर मनोनीत करता हूं।'**

आचार्यश्री महाश्रमणजी ने अपने पट्ट से नीचे उतर कर मुनिश्री सुमेरमलजी 'लाडनूं' को विनयपूर्वक वंदना करते हुए **'मंत्रीमुनि मनोनयन पत्र'** उनके हाथों में थमाया और उनसे प्रार्थनापूर्वक कहा कि—'आज आप मेरे पास कुछ देर के लिए कुर्सी पर विराजमान हों।'

दूसरी ओर मुनिश्री सुमेरमलजी 'लाडनूं' का अपने आचार्य के प्रति आदर और विनत भाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था। उनकी भंगिमाएं बता रही थीं कि वे इस निर्णय पर चकित और विस्मित हैं। गुरु आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए और पूर्ववर्ती **मंत्री मुनीश्वर मगनलालजी** का स्मरण करते हुए मंत्रीमुनि सुमेरमलजी 'लाडनूं' ने गुरुदेवश्री तुलसी के अवदानों का जिक्र किया और इस पद को श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया। अपने आचार्य के इंगित पर वे उनके पास ही कुर्सी पर भी विराजमान हुए, पर जन-जन को यह निरंतर लगता रहा कि यह सब करते हुए मंत्रीमुनि कहीं सकुचा भी रहे हैं।

इसी के साथ उपस्थित साधु-साध्वीवृंद ने अपनी मंगल भावनाएं मंत्रीमुनि के प्रति प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से प्रकट कीं। इसी तरह श्रावक समाज की ओर से भी मंत्रीमुनि की वर्धापना हुई।

इसी क्रम में आगम मनीषी मुनि महेंद्रकुमारजी ने **'बहुश्रुत परिषद'** के सदस्य के मनोनयन पर अपनी भावनाएं प्रकट कीं और नवमनोनीत मंत्रीमुनि के प्रति भी मंगल भावनाएं रखीं। मुनि सुमेरमलजी 'सुदर्शन' ने मुनिवृंद की ओर से शासनगौरव साध्वी राजीमतीजी ने साध्वी समाज की ओर से तथा समणी-नियोजिका मधुरप्रज्ञाजी ने समणीवृंद की ओर से मंत्रीमुनि के प्रति अपनी भावनाएं प्रकट कीं।

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया ने श्रावक-श्राविका समाज की ओर से मंत्रीमुनि की वर्धापना की, वहीं मर्यादा महोत्सव व्यवस्था समिति, राजलदेसर की ओर से श्री पन्नालाल बैद, नगरपालिका लाडनूं के अध्यक्ष श्री बच्छराज नाहटा और कमला कोठारी ने लाडनूंवासियों की ओर से नव-मनोनीत मंत्रीमुनि के प्रति मंगल भावनाएं व्यक्त कीं।

इस अवसर पर साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने मर्यादा के मूल आधार—एक गुरु की आज्ञा, अनुशासन और नेतृत्व पर प्रकाश डाला तथा मर्यादा महोत्सव की महत्ता का दिग्दर्शन कराया। उन्होंने आचार्यश्री महाश्रमणजी के 50वें वर्ष को **'अमृत महोत्सव'** के रूप में मनाए जाने के संदर्भ

शेष पृष्ठ 58 पर

बालकथा

हा! हूं लाटसाहब का बच्चा

रमेशचंद्र शाह

राजा का स्कूल जाने का बिल्कुल मन नहीं था। घर के बाहर बच्चों से लदा-फदा ऑटो-रिक्शा धड़धड़ा रहा था और घर में वह अर्जी लिखवाने को मचल रहा था। उसकी बड़ी बहन उसे समझा रही थी कि अब दो-चार दिन की ही तो बात है। फिर तो छुट्टी होनी ही है। क्यों खामखाह गैरहाजिर होते हो? मगर राजा टस से मस नहीं हो रहा था।—'पढ़ाई-वढ़ाई कुछ होती नहीं···· 'टीचर' दूसरे कामों में लगे रहते हैं···क्लास में भी नहीं आते···· फिर भी बैठे रहना पड़ता है····लड़के कितना तंग करते हैं, तुम क्या जानो···मैं तो नहीं जाऊंगा, बस····।'—राजा बोले जा रहा था।

इधर बहन-भाई—दोनों बहस में उलझे हुए थे और उधर ऑटो वाला चीखे जा रहा था और मेरा दिमाग खराब हुआ जा रहा था। रोज वही तमाशा! इसका स्कूल न हुआ, एक मुसीबत हो गई। जब देखो धुंधमारी! जब देखो धुंधमारी! झपट कर मैं अपने तख्त से कूदा और राजा पर बरस पड़ा····'नालायक! कामचोर! तू है कौन कहने वाला कि मैं स्कूल नहीं जाऊंगा? क्या लाटसाहब का बच्चा है?'

—···· 'हां। हूं····'—राजा ने एकाएक पलट कर जवाब दे दिया।

मेरा तो माथा ही भन्ना गया। मैंने आव देखा, न ताव। तड़ातड़ उसके दो तमाचे रसीद कर दिए।—'बदतमीज! शर्म नहीं आती तुझे? मुंह लगता है?'

यह क्या हो गया था—मुझे? यह हो क्या गया है मुझे? अगर माया बीच में न पड़ती तो····। मैं तो पागल ही हो गया होता। आखिर क्या गलत कह रहा था राजा। क्या मैं ही नहीं छांटता रहा हूं—लाटसाहबी? क्या मैंने ही नहीं सिखाया उसे स्कूल से नफरत करना? क्या मैंने ही अपने बचपन के किस्से सुना-सुना कर उसका दिमाग खराब नहीं किया है?

> *"तुम कोई जोखम नहीं उठा सकते। तुम सिर्फ झुंझला सकते हो और वह भी अपने ही घर में। तुम तो बस कतराना जानते हो और हमेशा कोई न कोई 'आड़' ढूंढ़ते रहना। कभी माया की, कभी अपनी व्यस्तता की, कभी स्वाभिमान की, कभी इस लाइलाज दुनिया की। है ना? तुम्हें 'आड़' की क्या कमी है! तो फिर····झुंझलाते क्यों हो? गरियाते क्यों हो—'फादर' को, 'टीचर' को, 'अभिभावकों' को? ठीक है, वे वहां 'झख' मारने जाते हैं—नाक रगड़ने को और तुम नहीं जाते। पर, इससे क्या होता है? इतनी ही अकड़ है तो जो स्कूल तुम्हें सही स्कूल लगता है, वह पैदा कर दिखाओ! आखिर कैसे चल रही हैं—ये झूठी और दिखावटी दूकानें। तुम्हारे जैसों की ही मिलीभगत से नहीं? यह मिलीभगत नहीं, तो क्या है?"*

तब स्कूल भी, स्कूल जैसा लगता नहीं था····होमवर्क कितना हलका होता था। अध्यापक भी कितने मजेदार और खुश-मिजाज किस्म के हुआ करते थे। अरे, उनकी मार भी अकसर प्यार जैसी लगने लगती थी।····कैसे वे हमारी शैतानियों को भी अकसर जानबूझ कर अनदेखा कर देते थे।····कैसे हम लोग कक्षा से गोल मारके नीचे नाले की ओर भटकने चल देते थे····। काफल के पेड़ पर चढ़ने या झाड़ियों में पके हिसालू तोड़ कर खाने···· और कैसे तो दोस्त हुआ करते थे, जो दूसरे साथी के बदले खुद पिटने को हमेशा तैयार रहते थे····मुंह तक नहीं खोलते थे।····कैसे दुनिया भर की किताबें हमने स्कूल के दिनों में ही चाट डाली थीं।

अरे, हां!!! स्कूल की पढ़ाई में भला किसका मन लगता था! वह तो रट्टू तोतों के लिए छोड़ दिया था हमने। ····और फिर भी देखो—कमाल की बात है कि बिना आंखें फोड़े ही, खेल-खेल में अपन पास भी हो जाते थे। 'पोजीशन' भी ले आते थे····।

और····बेचारा राजा! उसे ये सारी बातें परीकथा की तरह लगती हैं। जाने क्या बात है कि उसका कभी कोई दोस्त ही नहीं बनता। कक्षा से 'गोल' मार कर बहते नाले के साथ दौड़ लगाना और पेड़ पर चढ़ कर काफल तोड़ना या कांटेदार झाड़ियों में हलवे की तरह हिलगे हिसालू तोड़ कर खाना क्या होता है, इसकी वह केवल कल्पना कर सकता है। या, कल्पना भी नहीं कर सकता। केवल अचरज से आंखें फाड़े मेरा चेहरा ताकता रह सकता है।

अपने सहपाठी लड़कों को भी वह सिर्फ चुगलखोरों और आतताइयों की तरह पहचानता है। क्या अपने स्कूल से, क्या अपने 'टीचरों' से और क्या साथ के लड़कों से—वह सिर्फ नफरत कर सकता है? डर ही सकता है? डर और नफरत के सिवा और जाना ही क्या है उसने?

और मुझे भी लत-सी पड़ गई है—उसके स्कूल और 'टीचरों' का मखौल उड़ाने की। इसीलिए ना, कि वह वहां मेरी इच्छा से नहीं, अपनी मां की इच्छा से पढ़ रहा है। मगर इसमें भला उसका या उसकी मां का भी क्या कसूर है? राजधानी के इस शहर में क्या कहीं एक भी ठिकाने का हिंदी स्कूल है? आखिर भरती करवाने उसे मैं ही तो ले गया था। क्या मन ही मन मैं भी यही नहीं चाहता था कि कहीं मेरे पड़ोसियों के बच्चों की तुलना में वह पिछड़ा हुआ न रह जाए!

हां! एक बार, बस एक बार यह राजा भी 'फर्स्ट' ले आया था। फिर कभी नहीं लाया। मुझे अच्छी तरह पता है, वह क्यों 'फर्स्ट' के लायक होते हुए भी हर बार 'थर्ड' या 'फोर्थ' ही आता है। और, कभी-कभी तो 'सेवंथ' तक। उसके अंग्रेजी के 'टीचर' की एक बार मैंने गलती जो निकाल दी थी। राजा का वाक्य सही था बिल्कुल, मगर उस सही वाक्य को काट कर के 'टीचर' ने उसे 'सुधार(!)' दिया था। देख कर भी पहली बार तो मैं अनदेखा कर गया। मगर, जब दूसरी बार भी फिर उसी तरह गलती सुधारी गई, तो मुझसे नहीं रहा गया और मैंने राजा की कापी पर ही एक कोने में अपनी टिप्पणी जड़ दी थी।

और शायद यही बुरा हुआ। मुझे चेतावनी दी गई कि आपने की कैसे यह जुर्रत? जी हां, मुझे सचमुच फरमान मिला 'फादर' का, कि आइए, मुझसे मिलिए और रू-बरू खेद प्रकट कीजिए। हद हो गई। भला बताइए, मैं क्यों जाता वहां अपनी बेइज्जती करवाने! वैसे भी, जाने क्या बात है, अपना-अपना स्वभाव है। मैं तो अफसरों या 'हैडमास्टर टाइप' के लोगों के साथ ठीक से, ठंडे दिमाग से बिल्कुल निबट ही नहीं पाता। जाने क्या बात है कि हर ऐसे मौके पर मेरा रक्तचाप बढ़ जाता है—खुद-ब-खुद। और, मैं अपने को काबू में नहीं रख पाता।

सचमुच अगर मैं चला गया होता तो यह तय था कि तेज बातचीत हो जाती और राजा का 'टी.सी.' थमा दिया जाता मुझे। कि, जाइए आपके राजकुमार के लायक कोई दूसरा स्कूल ढूंढ़ लीजिए। हमारा पिंड छोड़िए।

हां! सिर्फ एक बार, केवल एक बार मैं राजा के 'फादर' से जाकर मिला हूं और उस अनुभव को दुहराने की इच्छा नहीं रखता। पता नहीं, क्या हो गया है—लोगों को! खुशामद कर-कर के उन्हीं ने तो सातवें आसमान पर चढ़ा दिया है। मैं तो नहीं हूं उन रीढ़हीन अभिभावकों में, जो इन लोगों के सामने नाक रगड़ते फिरते हैं। मैंने तो माया को भी मना किया था। मगर, वह तो माने तब

न? हद हो गई इस डरपोकपने की भी। 'फादर' की चिट्ठी न हुई, अदालत का सम्मन हो गया कि जिसकी तामील करनी ही है।

मगर····! माया को भला मैं किस मुंह से मना करता। मना करने का कोई मतलब भी था? अरे, अगर मुझे इतना ही प्यारा था—अपना स्वाभिमान, तो खुद जाता और भिड़ना था। कर क्या लेते वे? बस! निकाल ही देते न! पर, कैसे निकाल देते? स्कूल किसी के···· का है क्या?···· जब पता है कि तुम्हारा पक्ष न्याय का पक्ष है, तो हिचकने की क्या बात थी? भिड़ ही गए होते। सचाई तो सामने आ जाती। उन्हीं की पोल खुलती। जाने कितने अभिभावकों को कितनी तरह की शिकायतें होंगी।

पर, सब इसी तरह कतराते होंगे? तुम ही जरा तन कर खड़े हो गए होते तो क्या दूसरे भी तुम्हारा साथ न देते? न भी देते मानो, अकेले ही पड़ जाते तुम, तो ऐसा कौन-सा आसमान टूट पड़ता! अरे, जिस स्कूल पर तुम आए दिन कुढ़ते रहते हो कि वह ठगी और झूठ और भेद-भाव और···· जाने किन-किन बुराइयों का गढ़ है, उससे एकबारगी 'पिंड' ही छूट जाता तो····! नहीं-नहीं! उनकी क्या मजाल थी कि 'टी.सी.' थमा देते! इतना आसान है क्या स्कूल से निकालना एक निरपराध बच्चे को?

फिर तुम हिचके क्यों? पीछे क्यों हटे? तुम्हारे नहीं जाने से क्या तुम्हारे स्वाभिमान की रक्षा हो गई? तुम नहीं गए तो बेचारी माया को तो जाना ही था। क्या यह अच्छा हुआ कि तुम्हारे बदले तुम्हारी पत्नी को सुनना पड़ा? यह कैसा स्वाभिमान है, जो जूझना भी नहीं चाहता और बचे रहना भी चाहता है? तुम्हें शिकायत है—मन ही मन कि तुम्हारा बदला तुम्हारे लड़के से चुकाया जा रहा है। क्योंकि, तुमने उसके 'टीचर' की गलती निकाली थी और इसका खेद प्रकट करने भी नहीं गए थे। इसलिए नहीं गए थे कि तुम्हें खेद नहीं था। गुस्सा था और गुस्से में 'हैडमास्टर' से झगड़ा हो जाने का डर था और तुम इस बखेड़े में पड़ना नहीं चाहते थे। है ना?

तुम कोई जोखम नहीं उठा सकते। तुम सिर्फ झुंझला सकते हो और वह भी अपने ही घर में। तुम तो बस कतराना जानते हो और हमेशा कोई न कोई 'आड़' ढूंढ़ते रहना। कभी माया की, कभी अपनी व्यस्तता की, कभी स्वाभिमान की, कभी इस लाइलाज दुनिया की। है ना? तुम्हें 'आड़' की क्या कमी है! तो फिर····झुंझलाते क्यों हो? गरियाते क्यों हो—'फादर' को, 'टीचर' को, 'अभिभावकों' को? ठीक है, वे वहां 'झख' मारने जाते हैं—नाक रगड़ने को और तुम नहीं जाते। पर, इससे क्या होता है? इतनी ही अकड़ है तो जो स्कूल तुम्हें सही स्कूल लगता है, वह पैदा कर दिखाओ! आखिर कैसे चल रही हैं—ये झूठी और दिखावटी दूकानें। तुम्हारे जैसों की ही मिलीभगत से नहीं? यह मिलीभगत नहीं, तो क्या है?

क्या मैंने ही राजा से नहीं कहा था कि हमारे जमाने में इम्तहान के बाद छुट्टियां हो जाती थीं और सिर्फ उसी दिन स्कूल जाते थे, जिस दिन 'रिजल्ट' मिलता था? क्या मैंने ही उससे नहीं कहा था कि संसार में जितने भी बड़े-बड़े लोग हुए हैं, उनमें से किसी को भी स्कूल की 'कैद' अच्छी नहीं लगती थी?···· कि उनमें से कोई भी स्कूल में 'अव्वल' नहीं आया था?····कि स्कूल की पढ़ाई से कुछ नहीं होता?····

क्यों बकता हूं, मैं यह सब? वह कौन-सी गांठ है—मेरे भीतर, जो मुझ से यह सब कहलवाती है? जबकि सचाई और कड़वी सचाई यही है कि मैं चाहता हूं कि राजा हर बार 'फर्स्ट' आए और किसी से भी पीछे न रहे। नहीं तो···· मुझे आखिर यह शिकायत क्यों है कि उसे 'फर्स्ट' नहीं आने दिया जाता। उससे जानबूझ कर बदला निकाला जा रहा है।····क्या मैं भी अपने लड़कपन-भर 'फर्स्ट' आने के लिए ही नहीं तरसता रहा? क्या मुझे भी शिकायत नहीं थी—अपने अध्यापकों से, अपने पिता से और जाने किस-किस से? अपने बच्चों के सामने मैं जिस जमाने की खूबियां गिनाते नहीं थकता, क्या उससे मुझे सचमुच कभी कोई शिकायत नहीं थी? क्या मेरे साथ कभी कोई अन्याय नहीं हुआ था? क्या अच्छी यादों के साथ-साथ खासी 'कड़वी-यादों' का भी मेरे भीतर एक लंबा सिलसिला नहीं?···· फिर मैं काहे को उस तसवीर में मनमाने रंग भरता रहता हूं? क्यों उलझन

में डालता हूं—अपने बच्चों को, जो वैसे ही कोई कम परेशान नहीं।....

क्या मैंने ही राजा से नहीं कहा था कि इम्तहान हो जाने दो, फिर पचमढ़ी जाएंगे?.... कि छुट्टी चाहे जब से लगे, कोई फर्क नहीं पड़ता।

मैं कैसे भूल गया—यह सब?.... 'सूअर के बच्चे!' ....यह मेरे ही मुंह से निकला था न? मुझे हो क्या गया है—आजकल?

बेचारा राजा! —'हां! हूं'— उसने कहा था। पर, क्या गलत कहा था? हां, हूं; बेशक मैं लाटसाहब का बच्चा हूं। ....तुम लाटसाहब नहीं तो क्या हो, जो दो-दो दुनियाओं पर एक साथ सवारी गांठते हो! एक ओर मेरे स्कूल पर लानत भेजते रहते हो दिन-रात और दूसरी ओर, उसी में मेरे भविष्य की गारंटी ढूंढ़ते हो। एक ओर इस पढ़ाई का मखौल उड़ाते हो और दूसरी ओर चाहते हो कि मैं 'फर्स्ट' आता रहूं—हर बार। क्यों? कभी नीचे खिसका नहीं कि मुंह लटक जाता है—तुम्हारा। क्या मैं नहीं जानता? क्या मैं लाचार नहीं, तुम्हारी इस दोहरी 'लाटसाहबी' को ही रात-दिन ढोते रहने को?.... अपने ही जमाने की डींग हांकते रहते हो। अपने जमाने के 'डंडे' से इस जमाने को 'पीटते' नहीं थकते। और, दूसरी तरफ.... इस जमाने में भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहते। भला क्यों?

राजा यह सब नहीं सोच सकता। राजा यह सब कुछ नहीं कह सकता। राजा केवल मेरी बौखलाहट पर हतप्रभ हो जा सकता है। या ज्यादा से ज्यादा वह अचानक बिफर सकता है, जैसे आज बिफर गया था। 'हां, हूं मैं लाटसाहब का बच्चा।' तो फिर....? ❖

सुंदर भविष्य के सबल कारक

पृष्ठ 43 का शेष

अधिकार है। अतः शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के लिए मानवाधिकारों के प्रति सजगता और प्राणीमात्र की सुरक्षा प्रत्येक नागरिक का प्रथम कर्तव्य है। प्रदूषण और हिंसा से बचना मानव-मात्र के अस्तित्व के लिए जरूरी है।

- रोग, शोक, दुख एवं दारिद्र्य का एक कारण जीवों को कष्ट देना है। अशांति एवं अस्वास्थ्य का सीधा संबंध पर्यावरणीय छेड़-छाड़ से भी है। सबकी शांति में हमारी शांति निहित है। यह व्यष्टि का आधार हैं यही समष्टि चेतना भी है। समष्टि की चेतना के विकास का नाम है—अहिंसा का सामाजिक-स्वरूप। इसी से पूरा मानव समाज सुखी, समृद्ध एवं सर्वोदयी विकास कर सकता है।

जैन साहित्य के एक प्रसिद्ध ग्रंथ 'दशाश्रुतस्कंध' में निबद्ध भगवान महावीर की अमूल्य शिक्षाओं को आचार्यश्री तुलसी ने काव्यमय भाषा में सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। आज उन पर गौर करने की जरूरत है। ❖

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

● आपकी रचना कम से कम 1500-2000 शब्दों से लेकर 2500-3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।

●● रचनाएं 'फुलस्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।

●●● फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

तेरापंथ समाज ने आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक क्षेत्र में अभूतपूर्व काम किए हैं—महासभा अध्यक्ष श्री चिंडालिया

❑

राजलदेसर में संपन्न हुआ संबोधन अलंकरण, श्रेष्ठ ज्ञानशाला व श्रेष्ठ सभा पुरस्कार समारोह

❑❑

समयबद्ध अवधि में पूरा हुआ कालू कन्या महाविद्यालय भवन का निर्माण

❑❑❑

तेरापंथ धर्मसंघ के 147वें मर्यादा महोत्सव (8, 9 व 10 फरवरी, 2011) के अवसर पर जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के तत्त्वावधान में राजलदेसर (चूरू जिला) में संबोधन अलंकरण प्राप्तकर्ताओं तथा उनके परिवारजनों की एक मिलन गोष्ठी दिनांक 6 फरवरी, 2011 को सायंकाल आयोजित की गई। महासभा के पदाधिकारीगण, ट्रस्टीगण और देश भर से आए संबोधन अलंकरण प्राप्तकर्तागण और उनके परिवार के सदस्यों ने इसमें भाग लिया।

इस अवसर पर महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि—'महासभा का सौभाग्य है कि उसे पूज्यवरों द्वारा संबोधन प्राप्त समाज के ऐसे निष्ठावान, समर्पित और सिरमौर श्रावक-समाज को सम्मानित करने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस श्रावक-समाज ने अपनी अनुकरणीय जीवन शैली तथा धर्म के प्रति गहरी निष्ठा और गुरु के प्रति श्रद्धा-भावना से यह सिद्ध किया है कि यह एक सर्वश्रेष्ठ समाज है। इस समाज की सम्यक् जीवनचर्या, चारित्र और सदाचरण ने पूरे विश्व में एक अलग पहचान बनाई है। क्रांतदर्शी आचार्यों ने जैन धर्म के जिन शाश्वत मूल्यों को अपनाने पर सर्वाधिक बल दिया है, उसी बुनियाद पर तेरापंथ समाज ने आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक और मानवीय क्षेत्रों में अभूतपूर्व कार्य किए हैं।'

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा की 97वीं साधारण सभा अधिवेशन संपन्न

उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि—'महासभा संघीय निर्देशों के अनुसार अपने दायित्वों का निर्वहन कर रही है।'—महासभा द्वारा संचालित मेधावी छात्र प्रोत्साहन योजना, महासभा शिक्षा सहयोग योजना, ज्ञानशाला, उपासक श्रेणी, विसर्जन, जैन भारती और अभ्युदय के प्रकाशन तथा 'आचार्य महाप्रज्ञ पुस्तक विक्रय केंद्र' आदि के साथ ही भावी योजनाओं का भी श्री चिंडालिया ने उल्लेख किया तथा निर्मित हो रहे आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय तथा आचार्यश्री महाप्रज्ञ की स्मृति में निर्मित होने वाले स्मारक स्थल की एक झलक भी दिखाई।

महासभा के प्रधान ट्रस्टी श्री राजेंद्र बच्छावत ने अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा कि—'संबोधन अलंकरण समारोह की पूर्व संध्या पर आयोजित इस मिलन गोष्ठी में हम सभी आज धन्यता का अनुभव कर रहे हैं।'—उन्होंने आह्वान किया कि—'सभी संबोधन प्राप्तकर्ता परिवार संघ तथा महासभा के साथ सक्रिय रूप से जुड़ कर विकास में योगभूत बनें।'

महासभा के महामंत्री श्री भंवरलाल सिंघी ने इस अवसर पर कहा कि—'गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी द्वारा प्रारंभ किया गया संबोधन अलंकरण कार्यक्रम पिछले बीस वर्षों से प्रतिवर्ष मर्यादा महोत्सव के अवसर पर आयोजित किया जा रहा है।'—महामंत्री ने सभी संबोधन प्राप्तकर्ताओं के चित्र प्रदर्शित कर उपस्थित श्रावक-श्राविका समाज में संबोधन प्राप्ति के प्रति गौरवानुभूति तथा जीवन की उदात्तता एवं गुरु तथा संघ निष्ठा का भाव जागृत किया।

तेरापंथ विकास परिषद के संयोजक श्री लालचंद सिंघी ने अपने विचार रखते हुए कहा कि—'पूज्यवरों ने हमारे कार्यों को मान्यता दी है। पर इसने हमारे दायित्वबोध को भी बढ़ाया है। हम जो सेवा कर रहे हैं, उसे और भी उन्नत करना है तथा अपने समर्पण तथा निष्ठा भाव को और भी उत्कर्षता प्रदान करनी है। यह एक विलक्षण अनुभूति है।'

संबोधन प्राप्तकर्ताओं की ओर से कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए परतूर के श्रद्धानिष्ठ श्रावक डॉ. मानकचंद नाहर ने कहा कि—'महासभा द्वारा आयोजित यह कार्यक्रम अपने आप में अनोखा है। यह हमें अपनी ही नजरों में उन्नत करता है। यह आचार्यश्री तुलसी का महान अवदान है, जिसे आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने अग्रता प्रदान की और अब आचार्यश्री महाश्रमणजी गतिशील बनाए हुए हैं। महासभा इस तरह के आयोजन करके हमारे संघ की प्रभावना कर रही है।'

महासभा के उपाध्यक्ष श्री रतन दूगड़ ने मिलन गोष्ठी में उपस्थित संबोधन प्राप्तकर्ताओं तथा परिवारजनों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया। उन्होंने व्यवस्थाओं में संलग्न सभी समितियों तथा सहयोगियों के प्रति भी आभार व्यक्त किया।

संबोधन अलंकरण समारोह

मर्यादा महोत्सव के अवसर पर 7 फरवरी, 2011 को आचार्यश्री महाश्रमणजी के सान्निध्य में पूज्यवरों द्वारा विभिन्न संबोधनों से अलंकृत देश भर के 227 श्रावक-श्राविकाओं को अलंकृत किया गया।

इस अवसर पर अपना उद्‌बोध देते हुए आचार्यश्री महाश्रमणजी ने कहा कि—'समाज के श्रावक-श्राविकाओं के सद्गुणों, सेवाओं तथा समाज हित में किए गए कार्यों का अंकन करते हुए दिए गए संबोधन आत्मा के उत्थान की दिशा में प्रेरक का कार्य करें और वे अपनी आत्म साधना में उत्तरोत्तर गतिशील बनें—यही अपेक्षा है।' आचार्यश्री ने कहा कि—'संबोधन प्राप्तकर्ताओं के कार्यों को अंकित करके महासभा इतिहास रचती है। सभी सभाएं महासभा के विकासशील कार्यों में सहयोग करें—यह अपेक्षा है।'

महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया ने कहा कि—'आज का दिन श्रावक समाज की सेवा के मूल्यांकन का दिन है। इनके जीवन से यह आश्वास मिलता है कि हमारा समाज इनसे प्रेरणा ग्रहण कर उत्कर्ष को प्राप्त करेगा और हमारी भावी पीढ़ी भी अपने जीवन को उन्नत करेगी।'

इससे पूर्व महासभा के महामंत्री श्री भंवरलाल सिंघी ने संबोधन अलंकरण के महत्त्व का उल्लेख किया।

महासभा के अध्यक्ष सर्वश्री चैनरूप चिंडालिया, निवर्तमान अध्यक्ष जसकरन चौपड़ा, प्रधान ट्रस्टी राजेंद्र बच्छावत, उपाध्यक्षगण ख्यालीलाल तातेड़, प्रकाशचंद बैद, रतन दूगड़, कोषाध्यक्ष अरुण संचेती और ट्रस्टी भंवरलाल कर्णावट, रूपचंद दूगड़, तुलसी दूगड़ तथा राष्ट्रीय संगठन प्रभारी विजयसिंह चोरड़िया द्वारा स्मृति-चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का संचालन महासभा के महामंत्री श्री भंवरलाल सिंघी ने किया।

श्रेष्ठ ज्ञानशाला और श्रेष्ठ सभा पुरस्कार

इसी क्रम में दिनांक 8 फरवरी, 2011 को श्रेष्ठ ज्ञानशाला और श्रेष्ठ सभा पुरस्कार का कार्यक्रम भी आचार्यप्रवर के सान्निध्य में संपन्न हुआ। देश भर में संचालित ज्ञानशालाओं एवं सभाओं के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए उनमें श्रेष्ठ कार्य करने वाली ज्ञानशालाओं और सभाओं को पुरस्कृत किया गया।

इस अवसर पर महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि—'आज का दिन दो दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। आज हमारे धर्मसंघ का पावन पर्व मर्यादा महोत्सव शुरू हो रहा है। और हम सब आज श्रीगुरुचरण में अपनी अविचल निष्ठा और संपूर्ण आस्था समर्पित कर धन्यता का बोध कर रहे हैं। दूसरी ओर आज भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की महान तिथि वसंत पंचमी भी है, जिसका संबंध ज्ञान की आराधना से जुड़ा हुआ है। ऐसे में ज्ञानशालाओं की श्रेष्ठता के मूल्यांकन की प्रासंगिकता बहुत बढ़ जाती है। साथ ही तेरापंथ की महान मर्यादाओं के पालन के क्रम में सभाओं के कार्यों का मूल्यांकन भी बहुत महत्त्व रखता है। क्योंकि इसी से हमारे संघ और समाज की प्रगति सुनिश्चित होती है।'

इस अवसर पर उन्होंने ज्ञानशाला के राष्ट्रीय संयोजक श्री सोहनराज चौपड़ा और सभी संयोजकों, सभाओं, तेरापंथ युवक परिषद, महिला मंडल, प्रशिक्षकों को साधुवाद दिया जो ज्ञानशाला के संचालन में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।

देश भर में फैली सभाओं के श्रेष्ठ कार्यों के संदर्भ में महासभा अध्यक्ष ने कहा कि—'सभाएं केंद्र एवं महासभा द्वारा निर्देशित कार्यक्रमों और गतिविधियों को संचालित कर धर्म, अध्यात्म, संस्कृति और समाज सेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। सभाओं द्वारा संचालित इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर उन्हें श्रेष्ठ सभा और विशिष्ट सभा के रूप में सम्मानित किया जाता है।'

इस अवसर पर उधना (सूरत) को सर्वोत्तम ज्ञानशाला, उत्तर हावड़ा और सरदारशहर को श्रेष्ठ ज्ञानशाला और पल्लावरम (चैन्नई) को उत्तम ज्ञानशाला के रूप में पुरस्कृत किया गया। साथ ही श्रेष्ठ प्रशिक्षक और श्रेष्ठ ज्ञानार्थी आदि

को भी पुरस्कृत किया गया। इसी प्रकार उत्तर हावड़ा को श्रेष्ठ सभा और उधना (सूरत) को विशिष्ट सभा के रूप में पुरस्कृत किया गया। महासभा के अध्यक्ष सर्वश्री चैनरूप चिंडालिया, निवर्तमान अध्यक्ष जसकरन चौपड़ा, प्रधान ट्रस्टी राजेंद्र बच्छावत, उपाध्यक्षगण ख्यालीलाल तातेड़, प्रकाशचंद बैद, रतन दूगड़ आदि ने स्मृति-चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया।

महासभा की 97वीं वार्षिक साधारण सभा

दिनांक 9 फरवरी, 2011 को सायंकाल महासभा की 97वीं वार्षिक साधारण सभा तेरापंथ भवन, राजलदेसर में संपन्न हुई। श्री सुरेंद्र बोरड़ पटावरी मुख्य अतिथि के रूप में बेल्जियम से राजलदेसर आए। महासभा अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया ने मुख्य अतिथि का स्मृति-चिह्न एवं श्री राजेंद्र बच्छावत ने शॉल प्रदान कर उनका स्वागत किया। महासभा के अध्यक्ष श्री चिंडालिया ने मुख्य अतिथि तथा आगंतुक महानुभावों का स्वागत करते हुए विगत वर्ष की विशेष उपलब्धियों की जानकारी दी।

महामंत्री श्री भंवरलाल सिंघी ने विगत अधिवेशन की कार्यवाही का वाचन एवं वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसे सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। कोषाध्यक्ष श्री अरुण संचेती ने विगत वर्ष का आय-व्यय का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया, जिसे सर्वसम्मति से पारित किया गया। आगामी वर्ष हेतु अंकेक्षक के रूप में मैसर्स एस.एम. डागा एंड कं. की पुनर्नियुक्ति की गई एवं उनकी मानद सेवाओं हेतु उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

इस अवसर पर सर्वश्री बजरंग सेठिया, नोरतनमल बच्छावत, सुरेश बाफना, सुंदरलाल दूगड़, विनोद बैद, सुरेंद्र बोरड़, कमल दूगड़, कुलदीप बैद, सिद्धराज भंडारी, स्वरूपचंद बरड़िया, रणजीत सुराणा, मिलाप बोथरा व श्रीमती (डॉ.) मंजु नाहटा सहित अनेक महानुभावों ने अपने सुझाव एवं विचार प्रस्तुत किए।

वार्षिक साधारण सभा का संयोजन महासभा के महामंत्री श्री भंवरलाल सिंघी द्वारा किया गया।

•

नवनिर्मित आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय भवन का लोकार्पण

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा द्वारा आचार्यश्री तुलसी जन्म शताब्दी समारोह के एक स्थायी उपक्रम के रूप में जैन विश्वभारती के परिसर में नवनिर्मित **आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय भवन, आचार्यश्री तुलसी महिला शिक्षा केंद्र भवन** व **आचार्यश्री महाप्रज्ञ केंद्रीय शैक्षणिक भवन** का लोकार्पण दिनांक 20 फरवरी, 2011 को क्रमशः श्री राजेंद्र कुमार बच्छावत, श्रीमती कुमुद नवरत्नमल बच्छावत व श्रीमती मंगली देवी दूधोड़िया द्वारा किया गया। इन सभी आयोजनों में आचार्यश्री महाश्रमणजी का पावन सान्निध्य प्राप्त हुआ।

अपना पाथेय देते हुए आचार्यश्री महाश्रमण ने कहा कि—'ज्ञान व्यक्ति के भीतर का नेत्र है, जिसके विकास का सक्षम माध्यम शिक्षा केंद्र बनते हैं और अभिभावकों को यह अपेक्षा रहती है कि उनकी संतान शिक्षा संस्थानों में रह कर ज्ञानविद, सुसंस्कारी एवं आत्मनिर्भर बनें। उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने में शिक्षकों की बड़ी भूमिका होती है।'—अच्छे शिक्षकों की जरूरत और अर्हता पर बल देते हुए आचार्यश्री ने कहा कि—'जब शिक्षकगण समर्पण के भाव से कार्य करेंगे तभी विद्यार्थियों का सद्‌निर्माण हो सकेगा।'—ज्ञान के आध्यात्मिक पहलू को उद्‌घाटित करते हुए आचार्यश्री ने कहा कि—'ज्ञान सर्वोपरि तत्त्व है, अतः उसकी आराधना होनी चाहिए। भौतिक विद्याओं के साथ ही आध्यात्मिक विद्याओं का विकास होने से ही सर्वांगीण विकास की परिकल्पना आकार ले सकती है। आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय के माध्यम से शिक्षा एवं संस्कारों का बीजवपन हो, यही अपेक्षा है। यहां से निकलने वाली छात्राएं अपने संवेगों पर नियंत्रण रखते हुए मूल्यों की प्रतिष्ठा के प्रति संकल्पबद्ध होंगी।'

आचार्यश्री ने जीवन विज्ञान की शिक्षा को जरूरी बताते हुए कहा कि—'जीवन विज्ञान व्यक्ति के भावात्मक विकास का हेतु है, जो लौकिक और आध्यात्मिक, दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान करने में सहायक है।'—जैन संस्थाओं से जैन विद्या के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता बताते हुए कहा कि—'जैन विश्वभारती एवं उससे संबद्ध विश्वविद्यालय का कर्तव्य है कि वह जैन विद्या पर आवश्यक ध्यान दें।'—उन्होंने कहा कि—'ऐसा कम देखा जाता है कि एक संस्था दूसरी संस्था को उदारता के साथ योगदान करे, पर महासभा ने यह योगदान किया है, यह खास बात है। आचार्यों का इंगित मान कर महासभा ने तुरंत इस कार्य को हाथ में लिया और समय पर पूरा किया। अब यह विचारणीय है कि महासभा इस महाविद्यालय के विकास में आगे किस प्रकार से

सहयोग करती है। हालांकि महासभा ने हमेशा सहयोगात्मक हाथ बढ़ाया है और इस महाविद्यालय के विकास के लिए भी तैयार है।'

इस अवसर पर प्रो. मुनि महेंद्रकुमारजी ने सभा को संबोधित करते हुए कहा कि—'जिस तरह प्राच्य- विद्याओं के विकास हेतु जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय पर महत्त्वपूर्ण दायित्व है, उसी तरह आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय में आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण हेतु शिक्षा की अभिनव विद्याओं के प्रयोग होंगे, ऐसी आशा है।'

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया ने कहा कि—'चूंकि समाज के विकास में शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण आयाम है, अतः महासभा उसके प्रति हमेशा जागरूक रही है। इसीलिए ज्ञानशाला, मेधावी छात्र प्रोत्साहन योजना, महासभा शिक्षा सहयोग योजना आदि शैक्षिक योजनाएं महासभा द्वारा निरंतर सफलतापूर्वक संचालित की जा रही हैं और इनके माध्यम से समाज में शिक्षा एवं संस्कार का प्रसार किया जा रहा है।'

श्री चिंडालिया ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी और आचार्यश्री महाश्रमणजी द्वारा आचार्यश्री तुलसी जन्म शताब्दी समारोह के एक स्थायी उपक्रम के रूप में आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय भवन के निर्माण और विकास का दायित्व महासभा को सौंपने हेतु पूज्यवर के प्रति कृतज्ञता- ज्ञापित करते हुए कहा कि—'महासभा की पूरी टीम और ट्रस्ट बोर्ड ने पूज्यवरों के इंगित की आराधना करते हुए पूरी समयबद्धता के साथ केवल ग्यारह महीने की निर्धारित अवधि में तीन खंडों के इस भवन के निर्माण का काम लगभग पूरा कर लिया है। इसमें लगभग साढ़े सात करोड़ रुपये की लागत आई है। इस महाविद्यालय में शिक्षा के सभी आधुनिक संसाधन उपलब्ध हैं। इसका विस्तार लगभग 86,000 वर्गफुट में है, जिसमें 34 कक्षाकक्ष, पुस्तकालय, व्यायामशाला, 'एन.सी.सी.' कक्ष, चिकित्सा कक्ष, 'कंप्यूटर' कक्ष, खेलकूद कक्ष आदि उपलब्ध हैं। इस महाविद्यालय में लगभग 1300 छात्राएं सभी आधुनिक सुविधाओं के साथ अगले सत्र से अपनी पढ़ाई शुरू कर सकती हैं।' उन्होंने आह्लाद प्रकट करते हुए कहा कि—'यह महाविद्यालय पूज्यप्रवर की निर्देशना के अनुरूप समाज की शैक्षिक आकांक्षाओं को पूरा करने में सफल रहेगा।'

इस कार्य में महासभा के कोषाध्यक्ष श्री अरुण संचेती के पूर्ण सहयोग व निष्ठा तथा लगन की चर्चा करते हुए महासभा अध्यक्ष ने उनकी सराहना की।

जैन विश्वभारती के अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चोरड़िया ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी से साढ़े चार वर्ष पूर्व प्राप्त संदेश का वाचन करते हुए आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय भवन के निर्माण को एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बताया।

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय की कुलपति समणी चारित्रप्रज्ञाजी ने जीवन में शिक्षा के महत्त्व को उजागर करते हुए समाज के सदस्यों को ज्ञान-यज्ञ से जुड़ने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि—'आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का चिंतन किसी संप्रदाय तक सीमित न होकर संपूर्ण मानव समुदाय के लिए था। उन्होंने शिक्षा को केवल जीवन चलाने वाली वस्तु बनाने के बजाए मूल्यपरक शिक्षा पर जोर दिया।'

आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. समणी मल्लिप्रज्ञाजी ने समाज में महिला विकास और महिला शिक्षा की आवश्यकता बताते हुए इस क्षेत्र में तेरापंथ धर्मसंघ की विशेष भूमिका की जानकारी दी। उन्होंने कामना की कि यहां गृह विज्ञान 'कॅरिअर काउंसलिंग' एवं 'कांपिटिशन कोचिंग' की शुरुआत की जाएगी तथा शिक्षा एवं चरित्र निर्माण के साथ-साथ यहां पर छात्राएं अपना भावी जीवन-निर्माण भी कर सकेंगी। आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय की पूर्व प्राचार्या साध्वी ऋतुयशाजी ने संस्था के निरंतर विकास और विभिन्न बहुआयामी पाठ्यक्रम प्रारंभ करने की आवश्यकता बताई।

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के प्रधान ट्रस्टी श्री राजेंद्र बच्छावत ने लोकार्पणकर्ता के रूप में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि—'पूज्यप्रवरों ने नारी शिक्षा के संबंध में एक स्वप्न देखा था, उसी का साकार रूप आज हमारे सामने है। आज पूरा समाज इस महाविद्यालय को पाकर भाव विभोर और उल्लसित है। यहां लड़कियों को उच्च शिक्षा का अवसर मिलेगा और उनके व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास होगा।'

इस अवसर पर श्रीमती कुमुद बच्छावत ने भी अपने विचार व्यक्त किए। समारोह में सर्वश्री मदनलाल तातेड़, अरुण संचेती, ताराचंद रामपुरिया, विजयसिंह चोरड़िया, कमलसिंह बैद, विकास भूतोड़िया, राजेंद्र खटेड़ आदि उपस्थित थे।

इस अवसर पर सादुलपुर निवासी व कोलकाता प्रवासी श्री भंवरलाल घोड़ावत ने आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय को 25 लाख रुपयों के अनुदान की घोषणा की।

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा ने तीनों भवनों के लोकार्पणकर्ताओं—श्री राजेंद्र बच्छावत, श्रीमती कुमुद नवरत्नमल बच्छावत एवं श्रीमती मंगली देवी दूधोड़िया को स्मृति-चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया। साथ ही अनुदानदाता श्री प्रकाश मदनलाल तातेड़, श्री रूपचंद दूगड़, श्रीमती कमला शुभकरण कठोतिया, श्री डूंगरमल गिड़िया, श्री नरपतसिंह चोरड़िया, श्री डायमल दूगड़, श्री कन्हैयालाल पटावरी, श्री भंवरलाल बैद, श्री मांगीलाल सेठिया, श्री मोतीलाल कोठारी के साथ-साथ भवन के निर्माण में सहायक 'स्ट्रक्चर इंजीनियर' श्री किरीटभाई जानी, 'आर्किटेक्ट' श्री कीर्तिभाई शाह और श्री विश्वजीत सरकार को भी महासभा ने स्मृति-चिह्न देकर सम्मानित किया।

कार्यक्रम का प्रारंभ मुमुक्षु बहनों के मंगलाचरण से हुआ। स्वागत संगान छात्राओं द्वारा प्रस्तुत किया गया।

कार्यक्रम का संचालन समणी सत्यप्रज्ञाजी ने किया।❖

147वां मर्यादा महोत्सव

पृष्ठ 49 का शेष

में भी अपने विचार प्रस्तुत किए। और 'अमृत-महोत्सव' को गरिमामय सार्थकता देने का संकल्प व्यक्त किया। साध्वीप्रमुखाश्री ने पंचाचार की साधना के लिए कटिबद्ध होने का आह्वान किया तथा इसे आध्यात्मिक ऊर्जा देने वाला बताया। उन्होंने नवमनोनीत मंत्रीमुनि के प्रति अपनी मंगल भावनाएं भी प्रकट कीं।

मर्यादा महोत्सव के इस अवसर पर श्री कन्हैयालाल छाजेड़ ने इस वर्ष के प्रेक्षा पुरस्कार के लिए श्री रणजीत दूगड़ के नाम की घोषणा की। मुनि गिरीश कुमारजी ने अपनी पुस्तक 'आपके हाथ में है सफलता की चाबी' आचार्यवर को भेंट की। साध्वी जयंतमालाजी ने 'साध्वी हर्षकुमारीजी का जीवन-वृत्त' और साध्वी जिनबालाजी ने 'चैत्य पुरुष की साधिका—साध्वी गोरांजी' की पांडुलिपि आचार्यवर को भेंट की। शासनसेवी श्री भीखमचंद नखत ने 'आजीवन अणुव्रत हितैषी योजना' के प्रपत्र आचार्यप्रवर को अर्पित किए। इसी मौके पर चातुर्मास प्रवास समिति, केलवा के अध्यक्ष श्री महेंद्र कोठारी ने सभी को केलवा पधारने का आमंत्रण दिया। श्रीडूंगरगढ़ के मोहम्मद शकील व मोहम्मद रमजान ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा रचित गीत के दो पदों का संगान किया।

मर्यादा महोत्सव के इस अवसर पर साध्वीगण और समणीवृंद ने सुमधुर गीत प्रस्तुत किए। साध्वी मंगलप्रज्ञाजी ने भी अपने उद्गार व्यक्त किए। इससे पूर्व आचार्यश्री महाश्रमणजी ने 147वें मर्यादा महोत्सव के अवसर पर अपने द्वारा रचित गीत का सस्वर संगान किया जो संपूर्ण जनमेदिनी द्वारा भी उच्चरित होता रहा।

मर्यादा महोत्सव के इस अवसर पर हर वर्ष की तरह इस बार भी बड़ी हाजरी के लिए समस्त साधु-साध्वीवृंद व समण-समणीगण अपने वरीयता क्रम में खड़े होकर हाजरी का वाचन किया। यह दृश्य अत्यंत रोमांचकारी प्रतीत हुआ। आचार्यश्री महाश्रमणजी ने इसी अवसर पर साधु-साध्वियों के चातुर्मासों की घोषणाएं भी कीं। साथ ही कतिपय श्रावक-श्राविकाओं को विशिष्ट संबोधन प्रदान कर संबोधित भी किया।

इस मुख्य कार्यक्रम का संचालन मुनि मोहजीत कुमारजी ने किया।

मर्यादा महोत्सव के प्रसंग पर अवशेष कार्यक्रम ग्यारह फरवरी को संपन्न हुए। संघ सेवा और समाज सेवा पुरस्कार भी इसी दिन अर्पित किए गए। संघ सेवा पुरस्कार शासनसेवी श्री गुलाबचंद चिंडालिया (राजलदेसर) को दिया गया। समाज सेवा पुरस्कार श्री नोरतनमल बैद (राजलदेसर) को दिया गया। अणुव्रत लेखक पुरस्कार सुषमा जैन (सहारनपुर) को दिया गया।

आचार्यश्री महाश्रमणजी ने पुरस्कार प्राप्तकर्ताओं के प्रति मंगल भावनाएं प्रकट कीं। ❖

जानकारियों के आधार पर
भवानी सोलंकी

भंवरलाल सिंघी, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

With best compliments from :

Shree Ganesh Print-Fab

Bhera Chand Gogad

Shree Ganesh Print Fab Pvt. Ltd.

F-92 to 96 RIICO Industrial Area, Phase II
Pali-Marwar (Rajasthan)
Ph. : 02932-281121-22-23

Sister Concern :

Gogad Fabrics Pvt. Ltd., Pali
Sidhi Vinayak Fab Tex. Pvt. Ltd., Pali
B. B. Saha Pvt. Ltd., Pali
Gogad Garnite Pvt. Ltd., Pali
Padam Shree Tex Fab Pvt. Ltd., Balotra

जैन भारती, अप्रैल, 2011 ■ प्रेषण दिनांक 28 मार्च, 2011
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2009-2011

With Best Compliments From

B. C. Jain [Bhalawat]
FCA, ACS, ICWA
Director

SUNRISE
HOUSING CONSTRUCTIONS LTD.

Sunbeam Chambers, Ground Floor
New Marine Lines, Opp. Liberty Cinema, MUMBAI 400020 India
Tel. No.: 022-22096000/ 1/ 4 • Fax: 022-22095000
Mobile: 09821117813 • Email: cabcjain@gmail.com

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।